योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 31 दिसम्बर 1998 अंक 9

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) – 283 202

SIDDHYOG

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु०	7-00
वार्षिक शुल्क	रु०	70-00
द्विवार्षिक	रु०	130-00
आजीवन	रु०	700-00

इस अंक में

- अभ्यास 1
- अमृतकण 2
- ध्यान योग की महत्ता का प्रभाव (विशेष लेख) 3
- नहिं कोई सानी तेरा संसार में — ब्र. बृजमोहन वाशिष्ठ 6
- सम्पादकीय 7
- प्राणोपासना, प्राणयज्ञ तथा प्राणायाम — प्रो. आचार्य चन्द्रहास शर्मा 10
- किमस्तियोगः — द्वारका प्रसाद शर्मा 14
- योग और विश्वकल्याण — राजेश कुमार श्री वास्तव 18
- भगवान सूर्य नारायण — ब्र. ओमप्रकाश 22
- हमारे गुरुदेव — आर. सी. ठाकुर 29
- योग संदेश — केशवदेव उपाध्याय 33
- संत तुलसी जी के जीवन में भक्तियोग — डा. स्वामी केशवाचार्य 37

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 31 अंक 9	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः। तत्राप्यर्थान् बहुतर विपदान योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	दिसम्बर 1998

अध्यास

अत्रानात्मन्यहमिति मतिर्बन्ध एषोऽस्य पुंसः
प्राप्तोऽज्ञानाज्जननमरण क्लेश सम्पात हेतुः।
यैनैवायं वपुरिदमसत्सत्यमित्यात्मबुद्धया
पुष्यत्युक्षत्यवति विषयैस्तन्तुभिः कोशकृद्वत्।।

(विवेक चूड़ामणि—१३९)

अर्थात्

पुरुष का अनात्म वस्तुओं में 'अहम्' इस आत्म बुद्धि का होना ही जन्ममरण रूपी क्लेशों की प्राप्ति कराने वाला अज्ञान से प्राप्त हुआ बन्धन है, जिसके कारण यह जीव इस असत् शरीर को सत्य समझ कर इसमें आत्म बुद्धि हो जाने से, तन्तुओं से रेशम के कीड़े के समान, इसका विषयों द्वारा पोषण, मार्जन और रक्षण करता रहता है।

अमृत कण

रोयं यत्त्रत्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।

(गीता १३/१२)

जो जानने योग्य ब्रह्म का स्वरूप है, उसको भली भाँति कहूँगा। जिसको जानकर मनुष्य परमानन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त होता है, वह अनादिवाला परमब्रह्म न सत् ही कहा जाता है न असत् ही।

* * * * *

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभि:।।

(कठोपनिषद् १/३/१२)

यह सबका आत्म रूप परम पुरुष परमात्मा समस्त प्राणियों में रहता हुआ भी माया के परदे में छिपा रहने के कारण सबको प्रत्यक्ष नहीं होता है, केवल सूक्ष्म तत्वों को समझने वाले पुरुषों के द्वारा ही अति सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धि से देखा जाता है।

* * * * *

सुखमात्यन्तिक यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वत:।।

(गीता ६/२१)

इन्द्रियों से अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और उस अवस्था में स्थित हुआ यह योगी परमात्मा के स्वरूप से विचलित होता ही नहीं।

* * * * *

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।

(मुण्डकोपनिषद ३/२/९)

जो कोई भी उस परमात्मा को जान लेता है, वह महात्मा परब्रह्म परमात्मा ही हो जाता है।

* * * * *

विशेष लेख

ध्यान योग की महत्ता का प्रभाव

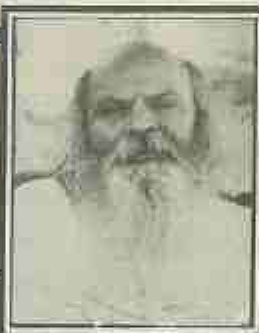

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने अपने पिछले व्याख्यान में वितर्कानुगत एवं विचारानुगत समाधि का वर्णन किया था आशा है तुमने समझ लिया होगा। वितर्कानुगत समाधि में पृथ्वी, जल अग्नि, वायु आदि पञ्च महाभूतों का साक्षात्कार होता है। निर्वितर्क में सूक्ष्म रूपों का साक्षात्कार होता है तथा सविचार में तन्मात्रायें एवं लोक लोकान्तर दिखाई देते हैं। जब योगी ऐसी स्थिति में पहुँचता है तो वह देवताओं से आगे के दायरे वाला होता है। लोग समझते हैं योग रूखी विद्या है। एक बार हम शिमला गये। हमारे प्रिय श्री श्याम लाल खन्ना शिमले में थे। उन्होंने मुझे वहाँ योग प्रचार हेतु आमन्त्रण दिया। कार्यक्रम स्थल के लिये सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के लोगों से सम्पर्क किया गया। उन्होंने कहा—योग रूखी सी विद्या है कला आदि का कार्यक्रम होता तो और बात थी इस प्रकार उन्होंने अपने यहाँ कार्यक्रम नहीं रखवाया। यद्यपि बाद में वहीं पर हमारे कई व्याख्यान हुये। मेरे कहने का तात्पर्य है लोग योग को रूखी विद्या समझते हैं। कहते हैं इसमें कोई आनन्द नहीं आता। सवाई गाँव में जगदीश पालीवाल वर्ष में एक बार अपने यहाँ उत्सव किया करते थे हमें भी व्याख्यान में बुलाया करते थे। एक बार वृन्दावन के प. वनमाली नाम के विद्वान भी बुलाये गये थे। मेरे व्याख्यान को सुनकर पहले तो प्रशंसा की। बाद में कहने लगे इनकी बात को मानना नहीं। संनिपात के रोगी को हलुआ खिलाओगे तो अवश्य मरेगा। वह कहने लगा—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नाम केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

दूसरे की स्टेज थी उस समय हमने उनका खंडन नहीं किया। दूसरे दिन फिर हमारे व्याख्यान की बारी आई। हमने भी उनकी बात दोहराई।

'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नाम केवलम्'।

हमने कहा—एक टेप रिकार्ड बज रहा है वह बोल रहा है हरे राम, हरे राम क्या उसकी मुक्ति हो जायेगी। वह कहने लगा। वह तो जड़ है उसकी क्या मुक्ति होगी। मैंने कहा—अच्छा, सड़क पर एक पागल है उसका दिमाग ठीक नहीं है उसे भले बुरे का कोई ज्ञान नहीं, उसके मुख से यदि राम, राम निकलता है तो क्या उसकी मुक्ति हो जायेगी। वे कहने लगे—उसकी क्या मुक्ति होगी उसमें तो सोचने की शक्ति ही नहीं है। वह तो चेतन है फिर भी मुक्ति नहीं होगी। आखिर राम नाम कहने से किसकी मुक्ति होगी यह सवाल उपस्थित हुआ— इस सवाल का जवाब मैंने ही दिया। मैंने तुलसीदास के समय का एक उदाहरण दिया। उनकी सभा में एक बार एक सवाल आया कि कौन व्यक्ति कितनी बार राम नाम उच्चारण से एक कोढ़ी को ठीक कर सकता है।

किसी ने कहा— मैं दो लाख राम नाम जप कर कोढ़ी को ठीक कर सकता हूँ किसी ने कहा—पाँच लाख जाप से ठीक कर सकता हूँ। इस प्रकार किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। आखिर में तुलसीदास जी ने कहा—राम इस शब्द की आवाज जहाँ तक जायेगी वहाँ तक के सब कोढ़ी ठीक हो जायेंगे। अब इसमें क्या अन्तर पाया ? तुलसीदास एक बार राम कहने से हजारों कोढ़ी ठीक करने की क्षमता रखते हैं और दूसरे लोग लाखों बार राम नाम जपने से एक कोढ़ी ही ठीक करने की घोषणा करते हैं। फिर मैंने कहा—यह तो ठीक है **'कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा'** कलिकाल में एकमात्र राम नाम गति का साधन है। किन्तु यह अवश्य बता दूँ बिना योग के कोई भी नाम मुक्ति का साधन नहीं बन सकता। र, म, च, छ, क आदि ये शब्द हैं आकाश से उत्पन्न होते हैं। आकाश में लय हो जाते हैं **नमः शिवाय, रामाय नमः, नमो भगवते वासुदेवाय ओम** आदि—आदि शब्द है आकाश से उत्पन्न होते हैं इसी में लय हो जाते हैं। शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता जब तक कि वह शब्द जिस अर्थ के लिये प्रयोग किया जा रहा है वह अर्थ ध्यान में न हो। शब्द के साथ जब तक अर्थ का चिन्तन नहीं होगा तब तक उससे कोई लाभ नहीं। नाम और नामी में अभेद सम्बन्ध रहता है। गीता में भगवान ने स्पष्ट कहा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन मामनुस्मरन्

यदि केवल व्याहरन कहते तो **'ओम'** इस उच्चारण से ही मुक्ति होती किन्तु साथ में मामनुस्मरन कहा है। **ओम** इस उच्चारण के साथ मुझे याद करता हुआ जो अपने शरीर को छोड़ता है वह परमगति को प्राप्त होता है। योग दर्शन इस बात को बतलाता है ईश्वर का वाचक प्रणव है उस प्रणव का जप करना चाहिये किन्तु **'तज्जपस्तदर्थ भावनम्'** के सिद्धान्तानुसार उस ओम के अर्थ की भावना रखनी चाहिये। इसका मतलब यह हुआ कि जो लाखों बार राम नाम का जाप करके एक कोढ़ी को ठीक करने का दावा करते थे। उनके शब्दों में अर्थ—भावना की कमी थी। तुलसीदास की ही पूरी अर्थ भावना थी। गोस्वामी तुलसीदास की ईश्वर प्रणिधान की श्रेणी थी उन्हें हम भक्ति श्रेणी में लें यह तो ठीक है किन्तु भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचकर वे ईश्वर प्रणिधान अर्थात् आत्म निवेदन की स्थिति पर पहुँच चुके थे। **'समाधिसिद्धीरीश्वर प्रणिधानात्'** के नियमानुसार तुलसीदास की सम्प्रज्ञात समाधि थी। ईश्वर प्रणिधान अथवा भक्ति विशेष से आकृष्ट किया हुआ ईश्वर उस पर अनुग्रह करता है और उसकी अभीष्ट वस्तु समाधि उसे प्रदान कर देते हैं। तुलसी—दास पर काशी में भगवान शिव ने शक्तिपात किया और कहा जाओ चित्रकूट में तुम्हें भगवान राम के दर्शन होंगे—इस कृपा के फलस्वरूप तुलसीदास को हर समय भगवान राम के दर्शन होने लगे। इस विशेषता के कारण तुलसीदास के मन में ताकत थी। वह ध्यान में बैठा करते थे अन्तर्मुखी बन गये थे। जो उनके मानसिक शक्ति का कारण था। एक ध्यानी साधक यदि दूसरे व्यक्ति का स्पर्श करता है तो उसका भी ध्यान लग सकता है यह कोई बड़ी बात नहीं है। कहा है—

यस्मिन् देशे वसेत योगी ध्यान योग विचक्षणः
सोऽपिदेशः भवेत पूतः किं पुनस्तस्य बांधवाः।

जिस देश में एक ध्यान योगी वास करता है

वह देश का देश पवित्र हो जाता है। फिर उसके बन्धु बांधवों का क्या कहना। तुमने एक बात सुनी होगी। प्रह्लाद को वरदान हुआ कि इसकी सात पीढ़ी स्वर्ग को चली जायें— इसका कारण यह है कि अंश अंशी का रक्त का सम्बन्ध रहता है इसलिये प्रह्लाद में अपने वंशजों का रक्त होने तथा प्रह्लाद के उनका शुभ चिन्तन करने से उनकी मुक्ति अवश्यम्भावी है। क्योंकि प्रह्लाद का मन एकाग्र है इसलिये उसके मन में शक्ति है। तुम स्वयं तजुर्बा करके देख लो। एक कमरे में ८–१० दिन किसी अच्छे ध्यानी को बैठाओ इसके बाद जिसका ध्यान न लगता हो उसको भी वहाँ बैठाओ। उसका भी अवश्य ध्यान लगने लगेगा। क्योंकि उस कमरे में योगी ने वास किया है। उसके परमाणु वहाँ स्थित है। सवाई गाँव में हमारी सिद्ध गुफा है, देखो मैं तो निमित्तमात्र बना हूँ। प्रात: जैसे मैं तुम्हें नाश्ते में हलवा आदि परोसता हूँ कछड़ी से परोसता हूँ इसी प्रकार से मैं तो कछड़ी का काम कर रहा हूँ सिद्ध गुफा में उन सर्वशक्तिमान की कृपा से लोगों को बड़ी–बड़ी दिव्यानुभूतियाँ होती हैं। हमारे बड़े गुरूभाई ब्र. गोपालानन्द जी थे। तुम लोग सोचते होंगे कि कोई और भी आप के गुरुभाई ताकतों वाले हैं। आप तो ब्र. गोपालानन्द जी की ही बात कहते हैं—ऐसी बात नहीं है। हमारे और भी गुरु भाई बहुत बड़ी–बड़ी ताकतों वाले हुये हैं। हरिहरानन्द जी भूतजयी सिद्ध है वे हिमालय में समाधिस्थ हैं। वे चाहें तो सशरीर ब्रह्म लोक तक आ–जा सकते है। मैं तुम्हें ब्र. गोपालानन्द जी की बातें इसलिये बताया करता हूँ क्योंकि मैं उनके साथ अधिक रहता था और उनका मेरे प्रति विशेष स्नेह था। लाहौर में जब हमारा कृष्ण गली नं. २ ग्वालमण्डी में आश्रम खुला ही था तो ब्रह्मचारी जी ने कहा— 'देखो ! हम एक कमरा सिद्ध करेंगे। आश्रम के बीच का एक हाल सिद्ध करने के लिये छः महीने के लिये चुन लिया गया— वहाँ किसी को सोने नहीं देते थे। उस कमरे में केवल ध्यानाभ्यास या कीर्तन ही होता था। इसका परिणाम यह निकला कि जिसको दीक्षा आदि देकर वहाँ ध्यान में बिठाते उसका ध्यान अवश्य लगता था और परम शान्ति मिलती थी। **'सोऽपि देशो भवेत् पूतो किं पुनस्तस्य बांधवा:** भाई बन्धुओं के लिये विशेषता क्यों कही ? विशेषत: इसलिये कही क्योंकि भाई बन्धुओं से अंश अंशी का सम्बन्ध है इसलिये योगी का तेज अपने अंश में जाना स्वाभाविक है। इसलिये लोग कहा करते है, तथा पुराणों में भी इस बात का संकेत है कि जिस कुल में एक अच्छा योगी या भक्त पैदा हो जाता है उस की कई पीढ़ियाँ तर जाती हैं।

एक बार श्री प्रभु जी के चरणों में भी इस प्रकार का जिक्र आया। एक हमारे अच्छे ध्यानी गुरुभाई थे। पितरों के लिये कुछ करने की बातें चली। श्री प्रभु जी ने भी उससे पूछा— तुम कुरुक्षेत्र नहीं गये ? गया में पिण्डदान आदि नहीं किया। उस गुरु भाई ने विनीत भाव से कहा— नहीं ! प्रभुजी। मैं कहीं नहीं गया। इस पर श्री प्रभु ने कहा— अब तू इस स्थिति में है उनके बारे में जब भी जैसा चाहेगा हो ही जायेगा। हमें यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ— उनके लिये कुरुक्षेत्र, गया जाने की जरूरत नहीं। जब चाहेगा वैसा हो जायेगा, ऐसा प्रभुजी ने क्यों कहा— यह था उसके ध्यान योग की शक्ति का फल जिसके फलस्वरूप वे अपने चिन्तन मात्र से दूसरे के कल्याण में सक्षम बन गये थे।

हमारे एक गुरु भाई मुजफ्फरनगर के थे उनका पहले का नाम रामरतन था। बाद में वे संन्यासी हो गये थे और परमार्थ निकेतन के पास अध्यात्म योगाश्रम की स्थापना कर वहाँ रहने लगे थे। श्री प्रभु जी से दीक्षा लेने के बाद प्रभु जी ने उन्हें मूलाधार कमल में ध्यान लगाने की आज्ञा दी। वे गणपति में लय हो जाया करते थे। श्री प्रभु जी उसे 'गणेश', कहकर पुकारा करते थे। 'अरे गणेश इधर आ'। ऐसा सुनते ही वह चटपट आ जाया करते थे। वह गणेश में लय रहा करते थे। एक बार एक साधक प्रभु जी के पास आया। वह बीस साल से मौनी थे। एक व्यक्ति ने सवाल किया प्रभु जी से ! प्रभु जी! ये बीस साल से मौन हैं। इसमें और रतनलाल में कौन श्रेष्ठ है ? प्रभु जी हँस कर कहने लगे— अरे ! रतन कुछ और है यह कुछ और है। रतन यूँ फूंक मार देगा तो वह उड़ जायेगा'। मतलब यह रतनलाल के मानसिक स्थिति की बात थी।

***

नहिं कोई सानी तेरा संसार में

रचनाकार—ब्र. बृजमोहन वाशिष्ठ

दिल की धड़कन में हो गुरूदेव तुम,
हो तुम्हीं प्राणों की झंकार में।
ज्योति तुम्हीं हो नयनों की मेरे,
तुम्हीं हो मेरे रक्त की रफ्तार में,
तुम ही हो मेरे वृन्दावन मथुरा।
तुम्हीं हो ऋषिकेश हरिद्वार में
बनारस में बसे हो बन सदाशिव,
तुम्हीं हो इस जगत विस्तार में।
सिद्धगुफा के महा प्रकाश तुम,
जीवन लगाया योग प्रचार में।
हम सब बालक हैं आपके ही,
देरी न करना हमारे उद्धार में।
तुमही हो चन्द्रमोहन गुरूदेव मेरे,
तुम ही हो बृजमोहन की इन्तजार में।
प्रभु रामलाल के तेज हो अद्भुत,
नहीं कोई सानी तेरा संसार में।

सम्पादकीय

योग साधना में विघ्न एवं उनकी निवृत्ति के उपाय

इससे पूर्व के अंक में मैंने योग साधना के विघ्न के रूप में अविरति नामक विघ्न का वर्णन किया था। इससे आगे का जो विघ्न वर्णित है उसका नाम है भ्रान्ति दर्शन। वस्तुत: इस सारे जगत को हम जिस रूप में देखते है हमारा भ्रान्ति दर्शन ही होता है। यह भ्रान्ति दर्शन अविद्या के कारण होता है। अविद्या को ही विपर्यय ज्ञान, मिथ्याज्ञान, भ्रान्ति आदि नाम से शास्त्रों में कहा गया है। अयथार्थ ज्ञान ही भ्रान्ति दर्शन है विपर्यय की परिभाषा करते हुये योगदर्शन में कहा गया है **'विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्**। अर्थात् विपर्यय उसे कहते है जो जैसा दिखाई दे रहा है वैसा वस्तुत: नहीं है। इसे मृग मरीचिका की तरह ही समझना चाहिये। जिस प्रकार से जेठ के महीने की तपती धूप में दोपहरी में सूर्य की सीधी किरणों के रेत पर पड़ने पर मृग को वहाँ जलाशय सा दिखाई देने लगता है किन्तु उस स्थान पर जब वह पहुँचता है तो उसे वहाँ जलाशय दिखाई नहीं पड़ता। **इसे ही भ्रान्ति दर्शन कहते हैं**। इस संसार में अज्ञान की दृष्टि से युक्त जीव को जब तक योगज अन्तर्दृष्टि नहीं मिल जाती तब तक उसे भ्रान्ति दर्शन होता ही रहता है। चित्त में जब तक रजोगुण तमोगुण की प्रबलता रहेगी इस भ्रान्ति दर्शन का अस्तित्व बना ही रहेगा। जलाशय में जब तक तरंगे उठती रहती हैं तब तक उसमें हम अपना प्रतिबिम्ब नहीं देख पाते हैं तथा न ही उसकी गहराई का पता चल पाता है। इसी प्रकार से चित्त जब तक चंचल वृत्ति वाला है वह वस्तुओं के ठीक–ठीक रूप को दिखा नहीं पाता। संस्कृत वाङ्मय में दर्शन तक व्यापक अर्थ को धारण करने वाला शब्द है। **'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'** अर्थात् जिसके माध्यम से हम किसी वस्तु या तत्व का स्वरूप देखपाते है वह **माध्यम दर्शन** कहलाता है। भौतिक पदार्थों को देखने के लिये चक्षु की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार से भौतिक पदार्थों को देखने का चक्षु माध्यम होने से चक्षु को हम 'दर्शन' कह सकते हैं। जिन शास्त्रों को आधार बनाकर हम परम तत्व की खोज करते हैं उन शास्त्रों को भी हम 'दर्शन' कहते हैं। जिस प्रकार से भौतिक पदार्थों के रूप का दर्शन नेत्रों के द्वारा होता है उसी प्रकार से अध्यात्म तत्व को देखने के लिये भी नेत्र की आवश्यकता है वह नेत्र हमारा चित्त या अन्त: करण है। अन्त:करण का अर्थ है भीतर की इन्द्रियाँ। करण नाम इन्द्रियों का है।

इसके दो भेद है **बाह्यकरण** जिन्हें हम ज्ञानेन्द्रियाँ कहते है दूसरा है **अन्त:करण** जो भीतर की इन्द्रियाँ हैं जो मन बुद्धि एवं चित्त के रूप में है ये दोनों करण ज्ञान प्राप्ति के उपकरण हैं। जिन सूक्ष्म तत्वों को हम बाह्य इन्द्रियों से देख नहीं सकते है उन्हें भीतर की इन्द्रियाँ ही देख पाती है। अध्यात्म तत्व का अनुभव या ज्ञान इन्हीं भीतरी इन्द्रियों से ही प्राप्त किया जा सकता है। आत्मा और बुद्धि को योग दर्शन में दो शक्तियों

के रूप में बताया है। आत्मा को दृक् शक्ति तथा बुद्धि को दर्शन शक्ति कहा जाता है। सूक्ष्म बुद्धि ही आत्मा दर्शन करती है। और बुद्धि की यह सूक्ष्मता विवेक प्रज्ञा से ही पराकाष्ठा को प्राप्त होती है। उस विवेकालोक सम्पन्न बुद्धि की **'ख्याति'** संज्ञा है। ख्याति अवस्था प्राप्त बुद्धि को **'ख्याति दर्शन'** के नाम से पुकारा जाता है। इसकी आत्मदर्शन में परमोपादेयता के कारण ही कहा गया है। **'एकमेव दर्शनम् ख्यातिरेव दर्शनम्'** अर्थात् आत्मतत्व को देखने वाला एक ही दर्शन है वह है ख्याति दर्शन। जब तक योगी ख्याति दर्शन को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसे भ्रान्ति दर्शन ही होता रहता है। कारण कि त्रिगुणात्मिका प्रकृति बुद्धि पर हावी रहती है। योगी का लक्ष्य ख्याति दर्शन को प्राप्त करना है। इस अवस्था से पूर्व साधक का चित्त रजोगुण व तमोगुण से युक्त रहा करता है। इस लिये उसे जो अनुभव होता है वह ज्ञान संशययुक्त रहा करता है। ध्यान योग की विभिन्न अवस्थाओं में साधकों को कई प्रकार के अनुभव होते हैं। जिनमें कुछ तो सत्य होते हैं और कुछ असत्य। असत्य अनुभव इसलिये होता है क्योंकि साधक का चित्त पूर्णरूप से निर्मल नहीं हो चुका होता है। जिस प्रकार रंगीन शीशे से देखने पर हमें वस्तुयें भी रंगीन दिखाई देती हैं इसी प्रकार से चित्त भी एक शीशे की तरह ही है। जिसमें से हम वस्तुओं को देखा करते हैं। निर्मल चित्त में ही वस्तुओं का ठीक रूप प्रतिबिम्बित होता है। ध्यानावस्था में साधकों को कई प्रकार से शब्द व रूप दिखाई दिया करते हैं जिसमें कुछ सत्य होते हैं और कुछ असत्य होते हैं। यह स्थिति तब तक रहती है जब तक योगी विवेक ख्याति को प्राप्त नहीं कर लेता। भ्रामक दृश्यों व शब्दों का सही–सही अर्थ न लगा पाने के कारण साधक बहुधा गलत धारणाओं में ग्रसित हो जाया करता है।

ऊर्ध्व लोक वासी देवता भी साधकों को भ्रमित कर दिया करते हैं। विचारानुगत समाधि में साधक के लिये बहुत खतरा रहता है। भ्रान्ति दर्शन के दृष्टान्त के रूप में परमपूज्य सद्गुरु देव भगवान एक घटना सुनाया करते थे। वह इस प्रकार है एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभुजी श्री मुल्खराज जी आदि शिष्यों के साथ रेलगाड़ी में अमृतसर जा रहे थे। उस गाड़ी में एक व्यक्ति भी बैठा हुआ था जिसके सिर में कई चोटें थीं और उनमें से रक्त बह रहा था। श्री प्रभु जी उसे देखकर मुस्करा रहे थे। शिष्यों ने उनसे पूछा कि आप इसे देखकर क्यों मुस्करा रहे हैं ? श्री प्रभु जी ने कहा—तुम इसी से पूछ लो कि इसने अपनी हालत ऐसी क्यों बनाई हुई है। उनके पूछने पर उस व्यक्ति ने अपनी व्यथा कथा इस प्रकार सुनाई—हम तीन चार व्यक्ति सिद्ध दर्शनों की इच्छा से हरिद्वार में चण्डी की पहाड़ी पर गये। वहाँ कई दिन तक सिद्धों की तलाश करने पर भी कोई सिद्ध पुरुष नहीं मिला। निराश होकर अन्य साथी तो वापिस लौट आये किन्तु मैं वहाँ बना ही रहा। एक दिन घूमते हुये मैं एक स्थान पर पहुँचा जहाँ सुन्दर सुन्दर फूलों से लदा हुआ एक बगीचा था। उस बगीचे में दो चार घड़े रखे हुये थे। परन्तु दूर तक कोई आदमी दिखाई नहीं दे रहा था। पास में ही पानी का झरना बह रहा था। मैं उन घड़ों में पानी लाकर उन पौधों को सींचने लगा। एक दिन एक महात्मा वहाँ आ गये। मेरी सेवा को देखकर वह मुझ पर प्रसन्न हुये। उन्होंने मुझे ध्यान की विधि बता दी और भजन में लगा दिया। मैं नियमित

भजन करने लगा। मेरा मन भी एकाग्र होने लगाथा। एक दिन ध्यान में ऐसा अनुभव हुआ कि घर में मेरी पत्नी धनाभाव में कष्ट पा रही है। बच्चे भी कष्ट में ही दिखाई दिये। मैंने सोचा—मुझे एक बार घर जाकर पत्नी व बच्चों की समुचित व्यवस्था कर आनी चाहिये। इसी बीच में महात्मा जी वहाँ आ गये। मैं इंतजार करने लगा कि कब महात्मा जी समाधि लगाने को जंगल में जाये और मैं घर जाऊं। कई दिन बीत जाने पर भी वह जब समाधि लगाने नहीं गये तो मैंने पूछ लिया— महाराज जी ! अब की बार आप समाधि नहीं लगायेंगे। उन्होंने कहा—चिरंजीव ! मेरा विचार कुछ ऐसा बन रहा है कि अब की बार में तुम्हें समाधि में बैठा दूँ। मैंने कहा—नहीं महाराज ! मैं समाधि में नहीं बैठूंगा'।उन्होंने कहा —अच्छा ! तुम्हारी इच्छा।'

इसके बाद एक दो दिन बाद वह महात्मा समाधि लगाने के लिये फिर दुर्गम पहाड़ी पर चढ़ गये। उनके जाने के बाद मैं तुरन्त घर की ओर चल पड़ा। घर में आकर मैंने देखा कि पत्नी तथा बच्चे सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं किसी वस्तु का अभाव नहीं है। मैं फिर वापिस योग ध्यान का अभ्यास करने के लिये उसी स्थान पर लौट गया। किन्तु बहुत आश्चर्य था मेरे बहुत ढूँढ़ने पर भी मुझे न तो वह महात्मा ही मिले और न ही वह बगीचा ही मिला। मैंने एक सुरक्षित स्थान पर रात्रि बिताने के लिये शरण ली। रात्रि में मैं सो गया किन्तु मुझे बहुत ही आश्चर्य और दुःख था जब मैंने प्रातः काल अपने आप को हर की पौड़ी के सामने गंगा किनारे पर पड़ा पाया। सिद्धों ने अपनी शक्ति से मुझे उस स्थान पर पटक दिया था। अपने इस दुर्भाग्य पर अपने आप को कोसते हुये मैंने स्वयं ही अपने सिर पर कई पत्थर मारे जिससे मेरी यह हालत हो गई है।''

उपर्युक्त घटना इस बात का संकेत देता है कि किस प्रकार से साधकों को भ्रांतिदर्शन हुआ करता है और उन्हें इसका दुष्परिणाम भोगना पड़ता है। एक ओर घटना परम पूज्य सद्गुरुदेव जी अपने एक बच्चे रमण गिरि को बताया करते थे। उसे ध्यान में देवलोक के देवताओं ने कहा—तुम वृन्दावन में कुसुम सरोवर में आ जाओ ! वहाँ तुम्हें यह देव कन्या मिलेगी आदि—आदि।

रमणगिरि बिना गुरुदेव की आज्ञा के चुपचाप चला गया। तीन दिन तक उस निर्दिष्ट स्थान पर भूखा प्यासा पड़ा रहा किन्तु कोई देवकन्या उसे नहीं मिली। तत्पश्चात वहीं पर रहते हुये किसी मर्त्यलोक की स्त्री में आसक्त होकर योगभ्रष्ट हो गया। अस्तु ! इस प्रकार जो ध्यान के अनुभव को पूर्णतया सत्य मान कर उन पर चलते हैं तो उन का योग मार्ग अवरुद्ध हो जाया करता है। जब तक चित्त पूर्ण रूप से सतोगुणी होकर विवेकख्याति की स्थिति तक नहीं पहुँच पाता तब तक अनुभवों में संशय या भ्रान्ति का होना संभावित ही रहता है।

भ्रान्ति दर्शन को दूर करने का उपाय योग साधना से सतोगुण का पूर्ण विकास तो है ही साथ में गुरुभक्ति भी आवश्यक तत्व है। जो विशुद्ध गुरुभक्त होते हैं गुरुदेव की पूर्णकृपा उन पर रहती है वे अन्तः प्रेरक बनकर भ्रान्तियों का निवारण करते हैं। एक गुरुभक्त के मन में संशय या भ्रान्ति का कोई स्थान नहीं होता।

* * *

प्राणोपासना, प्राणयज्ञ तथा प्राणायाम

प्रो. आचार्य चन्द्रहास शर्मा

प्राण की सत्ता के कारण प्राणीमात्र का अस्तित्व है। प्राणशक्ति की न्यूनाधिकता के आधार पर ही प्राणियों का अधिक या कम महत्व होता है। प्राण–ऊर्जा के आधार पर ही प्रत्येक प्राणी का अपना–अपना ऊर्जा क्षेत्र या आभा मण्डल विकसित होता है। प्राणों की क्रिया युक्तयुक्त रहती रहे तो किसी प्रकार की आधि–व्याधि का आक्रमण नहीं होता। व्याधि की दशा में या मनोविकार की दशा में प्राणों की समता विक्षुब्ध होकर इन्द्रियों और शरीर में नाना प्रकार के विकारों का उत्सृजन होता है। हिक्का, छर्दि, दमा, नजला, जुकाम, अजीर्ण, मतिभ्रम, विक्षिप्त स्थिति, अनिद्रा, चिन्ता, तनाव, अस्थिर चित्तता, मन की मायूसी, काम, क्रोध, लोभ, हिंसा प्रवृत्ति आदि सभी विकार प्राणों के क्षुब्ध होने पर क्लिष्ट कर्मों के परिणाम स्वरूप लक्षण रूप में प्रकट होते हैं। योगशास्त्र के विभिन्न आचार्यों ने इस प्रकार के विविध उपसर्गों के शमन के लिये प्राणोपासना का विधान किया है। पातंजल योगदर्शन के **'तत्प्रतिषेधार्थमेक तत्वाभ्यासः'** –इस सूत्र में विघ्नों की निवृत्ति के हेतुभूत जिस एक तत्व के अभ्यास का उपदेश किया गया है, वह एक तत्व प्राणों का प्राण प्राणेश्वर का वाचक–**प्रणव तत्व** है। प्रणव का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– **प्राणान् नयति वा प्राणैः स्तूयते वा प्राणान् अवति।** अर्थात् जिसमें प्राण विश्रान्ति पायें जिसका प्राण स्तवन करें या जिसकी सत्ता से प्राणों का स्पंदन होकर रक्षा होती है। **यही ऊँकार स्वरूप प्रणव है।** भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय के आचार्यों ने प्राणों के बीज रूप ध्वनि मूलक तत्व को प्रणव माना है। ॐ, ह्रीं, क्लीं, श्रीं आदि–आदि बीजाक्षरों से ही प्राणोपासना या प्रणवोपासना की प्रक्रिया का विधान किया है। इस प्रकार की मंत्रजप प्रक्रिया में **'चित्तं मंत्रः'** तथा **'मननात् मंत्र'** के सिद्धान्तानुसार मन के स्थैर्य द्वारा प्राणजय का कार्य किया जाता है। क्योंकि मन और प्राण एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह अथवा छाया और पुरुष की तरह परस्पर सम्बद्ध हैं। **'यत्र मनः लीयते तत्र प्राणाः लीयन्ते'** तथा **'यत्र प्राणाः लीयन्ते तत्र मनोऽपि लीयते'**–अर्थात् जहाँ मन लय होता है वहाँ प्राण भी लय होते हैं तथा जहाँ प्राण लय होते हैं वहाँ मन लय हो जाया करता है। इसलिये **मनोजय साधना** अर्थात् **राजयोग** और **प्राणजय साधना** अर्थात् **हठयोग** दोनों का लक्ष्य एक है। प्राणोपासना श्रुति सम्मत तथा तर्क संगत होने से विज्ञानवादी तथा दार्शनिक दोनों प्रकार के विद्वानों को स्वीकार्य हैं। उपनिषदों में प्राणोपासना को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। प्राण संयम से स्वरूप प्रतिष्ठा होती है, अतः तंत्र, योग, पुराणों तथा कर्मकाण्ड में मनोनिग्रहार्थ प्राणायाम को आवश्यक माना गया है। गीता में प्राणायाम को **प्राणयज्ञ** का नाम दिया गया है–

'अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः।।
अपरेनियताहाराः प्राणा–प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषः ।। ४/२९/३०

प्राणों की अपान में आहुति देना, अपान की प्राण में तथा प्राण की प्राण में आहुति देना ये प्राण यज्ञ कर्म प्राणी को समस्त क्लिष्ट कर्मों के मलों से मुक्त कर देने वाले है। योग दर्शन में प्राणायाम के फल का उल्लेख करते हुए कहा है– **'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'** अर्थात् प्राणायाम द्वारा प्रकाश के मार्ग के समस्त आवरणों का क्षय होता है। उपनिषदों में प्राणविद्या के महत्व को (प्रश्नोपनिषद् में ३, ११, १२) में रेखांकित किया गया है–

'य एवं विद्वान् प्राणं वेद न हास्य प्रजाहीयतेऽमृतो भवति। तदेष श्लोकः– 'उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा। अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते। अर्थात् प्राणविद्या को जानने वाले विद्वान की सन्तति का कभी विच्छेद नहीं होता। वह अमृततत्व को उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में एक श्लोक है कि प्राणों की उत्पत्ति, विस्तार, स्थान महत्व तथा अध्यात्म स्वरूप–इन पाँचों को भली–भाँति जानकर प्राणी अमृतत्व को प्राप्त करता है। योगदर्शन की विभूतियों के प्रसंग में संकेत है कि प्राणायाम के बल से योगी पंचभौतिक देहस्थ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश तत्वों को न्यूनाधिक करने की सामर्थ्य प्राप्त कर भूतजय करने में समर्थ होता है। जिससे परिणाम स्वरूप पंचभूत उस योगी के ऊपर अपना दुष्प्रभाव पैदा नहीं करते। प्राणायाम के बल से योगी स्थूल शरीर से लिङ्ग शरीर को पृथक् कर विदेह सिद्धि तथा इन्द्रियजय कर मनोजवित्व, कामरूपत्व विकरणभावत्व आदि सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। प्राणायाम के अभ्यास से योगी के सभी कर्ममल उसी प्रकार दग्ध हो जाते हैं जैसे गर्म करने पर धातुओं के मल दग्ध हो जाया करते हैं। जिससे योगी पाप वासना तथा स्वर्ग भोगादि इच्छा मुक्त होकर प्राणों की तरल एवं हल्की ऊर्जा के संवेग से प्रयाणकाल में विभुप्राण के बल से उत्तरायण मार्ग द्वारा सूर्यमण्डल को बेधकर देवयान मार्ग से ऊर्ध्वलोकों में आरूढ़ होता है। **'सत्व पुरुषयोरन्यता ख्याति'**–इस सूत्र में संकेत है कि जब प्राण ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर तरल होते है तब मनुष्य बुद्धि और आत्मतत्व के स्पष्ट भेद का ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्माकार वृति के द्वारा ब्रह्मानुभूति की साक्षात् परोक्ष सिद्धि प्राप्त करता है।

प्राण क्या ? प्राण ब्रह्म की चराचर विश्व में व्याप्त शक्ति है। समस्त विश्व प्राण शक्ति से ही क्रियाशील है। अथर्ववेद के प्राणसूक्त मण्डल १ में प्राण की महिमा का उल्लेख इस प्रकार है–

'ॐ प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे, यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।'

ब्रह्माण्ड की भाँति पिण्ड (शरीर) में प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। छन्दोयोपनिषद् में उसकी ज्येष्ठता तथा श्रेष्ठता एक उपाख्यान द्वारा वर्णित है इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, तनमात्रायें तथा महाभूतों में "कौन

श्रेष्ठ है– यह विवाद उत्पन्न हुआ। शरीर को सभी एक–एक कर त्याग कर जाने लगे। फिर भी शरीर रहा। किन्तु प्राण के चले जाने पर अन्य के रहने पर भी सभी का होना निष्प्रयोजन हो गया।

प्राण वैदिक वाङ्मय की संकल्पना है। किसी अन्य भाषा में इसका पर्याय या अपभ्रंश नहीं मिलता। श्वांस–प्रश्वास तो प्राणों की बाह्य क्रिया मात्र है। उसकी अन्तर्मुखी क्रिया ही योगियों की प्राणोपासना है। जिसका संकेत शिवसूत्र में **'मध्य विकासात् चिदानन्दलाभः**– इससे किया गया है। मध्यनाड़ी में प्राणों की अन्तर्मुखी स्थिति का मार्ग है। इड़ा– पिंगला में प्राण की गति बाह्य श्वांस–प्रश्वास मात्र है। इसके चलते साधक कालाग्नि की मृत्यु का वरण करता है। जब तक काल मार्ग का त्याग कर सुषुम्णा रूप मध्यमार्ग में जीव का प्रवेश नहीं होता तब तक **योगस्थः कुरु कर्माणिसंगं–त्यक्त्वा धनंजय** (गीता) की स्थिति प्राप्त नहीं होती। निष्काम कर्म की अवस्था प्राण की अन्तर्मुखी मात्रा के कर्म ही है, बाह्य अवस्था के कर्म नहीं। मध्य मार्ग में मन के साथ प्राण के प्रविष्ट होने पर (मंत्र जप द्वारा, अथवा श्वास–प्रश्वास पर ध्यान की क्रिया जिसे बुद्ध दर्शन में आनापान स्मृति कहा गया है; स्थूल शरीर से मन का निष्क्रमण होकर सूक्ष्म शरीर के स्तर में प्रवेश होता है। उस समय बाह्य जगत की स्मृति प्रायः लुप्त हो जाती है और श्वास–प्रश्वास का आवागमन सूक्ष्म हो जाता है। किन्तु चैतन्य अभ्यन्तर में भास्वर हो उठता है। शनैः शनैः विविध बन्ध, मुद्रा और प्राणायामों के परिकर्मों द्वारा सूक्ष्म शरीर से आगे कारण शरीर में प्राणों की यात्रा होती है। सुषुम्नावाही प्राण उसके मध्यस्थित वज्रानाड़ी में प्रवाहित होने लगता है। उस अवस्था में प्राण की प्रसार प्रणाली ७२१०० नाड़ियों की शाखा–प्रशाखाओं में प्राण की गति होती है जिससे शरीर चिन्मय हो उठता है। उसके आगे प्राणशक्ति चित्रानाड़ी में संचार करती है। उस स्थिति में संशय रहित ज्ञान के आलोक का उदय होता है। संशय ग्रन्थि के छेदन होने पर विकल्पमय जीव भाव नष्ट हो जाता है। इसी को शैवागम में पशुभाव की निवृत्ति का स्थान कहा गया है। प्राणशक्ति का आश्रय मध्यनाड़ी ही है। इसका जितना–जितना विकास होता जाता है उतना–उतना साधक नीरोग, प्रज्ञावान तथा ऐश्वर्य युक्त होता जाता है। हठयोग में इसलिए कहा गया है कि **नास्ति कुम्भकसमं बलम्'**– केवली कुम्भक सिद्ध होने पर योगी के लिए कुछ भी असम्भव नहीं रहता। त्रिगुणातीत अवस्था प्राप्त करने की साधना **प्राणोपासना** या **प्राणायाम** है। प्राणशक्ति का जितना–जितना विस्तार और सूक्ष्मरूप होता जाएगा उतनी ही मात्रा मे चेतनतत्व (चित् शक्ति) का प्रकाश होगा। **गौतमी तंत्र** के अनुसार सुषुम्ना त्रिगुणमयी है। उसमें तमोगुण की प्रधानता है। वज्रा नाड़ी में रजोगुण प्रधान है। उसमें सूर्य का तेज है। चित्रिणी सतोगुण प्रधान चन्द्ररूप है। उनके अन्तस्थ में ब्रह्मनाड़ी शुद्ध विद्या की प्रकाशिका चिदानन्दमयी त्रिगुणातीता है। यह मूलाधार स्थित स्वयंभूलिंग छिद्र से लेकर सहस्त्रार में ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त परमशिव तक व्याप्त है। ब्रह्मरंध्र उसी के मुख में है, जहाँ सुषुम्णा का मूल है। यहाँ तक की यात्रा पर परम विशान्ति अथवा कैवल्यलाभ करना (जन्ममरण के चक्र से मुक्ति) योगसाधना का मुख्य लक्ष्य है। केवली कुम्भक की सिद्धि होने पर हृदय से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त ३६ अंगुल तक प्राण का सूक्ष्म संचार होता है। यही अनाहतनाद की अनुभूति का स्थान है। यहाँ पर जब प्राणशक्ति क्रियाशील होकर अनुभवगम्य होती है

तभी महाकारण शरीर रूपी बिन्दुदेह में स्वरूप के दर्शन का आनन्द और आह्लाद प्राप्त होता है। यहीं पहुँचकर वैदिक ऋषि की यह प्रार्थना– **मृत्योर्माऽमृतं गमय**– सार्थक होती है।

यहाँ तक प्राण की क्रियात्मक स्थिति का स्वरूप कथन किया गया। 'प्राण' का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है–प्र + अन् = जीवन–शक्ति एवं चेतना, जीवन कला। इसका अनुवाद अंग्रेजी में Breath किया गया है। इसका अर्थ श्वास–प्रश्वास होता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने प्राण को Psychic force कहा है। कुछ अंशों में यह अर्थ ग्राह्य है, क्योंकि मन के द्वारा शरीर में प्राण गति करते हैं। प्रश्नोपनिषद् ३/३ में इसका संकेत है– मनोऽधिकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे।' आदि शंकराचार्य ने प्राण को वायु अथवा मन या चित्त की क्रिया से भिन्न आत्मशक्ति माना है। **'न वायुप्राणो नापि करण व्यापार:'**– ब्रह्मसूत्र २/४/९ मुण्डकोपनिषद् में प्राण को ब्रह्म से आविर्भूत माना गया है। स प्राणस्य प्राण **'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च'**– मुण्डक २–१–३। इसी प्रकार प्रश्नोपनिषद में समष्टिरूपपरमात्मा से अणुरूप प्राण प्रकट हुआ जैसे अग्नि से स्फुलिंग प्रकट होते हैं। 'स प्राणमसृजत, प्राणाच्छ्रद्धां खं वायु– र्ज्योतिराय: पृथ्वी इन्द्रियं मनोऽम्।' ६/४। प्राणतत्व में सत्शक्ति और चितिशक्ति दोनों का संयोग है जिसे प्राण पर संयम करके अनुभव गम्य करना योग का विहंगम मार्ग है। बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार तेजरूपी रस अग्नि बना। वह तीन प्रकार का हो गया– आदित्य, वायु तथा प्राण। यह प्राणतत्व सारी सृष्टि का मूल कारण माना गया है। **'यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राण एजतिनि:सृतम्।'** कठोपनिषद ६/३ प्राण को वायु के पंचविध कार्यों के आधार पर पंचविध माना गया है। यथा प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। इनके पाँच उपप्राण–नाग–कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय नाम से हैं। ब्रह्म सूत्र २/४ में उल्लेख है कि प्राण न वायु है, न इन्द्रियों की क्रियायें। **'न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्।'** वस्तुत: प्राण के अधीन समस्त इन्द्रियाँ और वायु अपना–अपना व्यापार करती है। प्राणतत्व के आधिदैविक Cosmic और आध्यात्मिक Micro cosmic दो रूप हैं। आधिदैविक समष्टि–व्यष्टि व्याप्त हिरण्यगर्भरूप विभुप्राण है। आध्यात्मिक रूप में प्राण अणु है जो मरण समय जीवात्मा के साथ शरीर से बाहर उत्क्रमण कर जाता है। इसकी पाँच प्रवृत्तियाँ जीवात्मा के अधीन कार्य करती हैं। आधिदैविक प्राण की भी पाँच प्रवृत्तियाँ समष्टिगत प्राण के साथ संगति कर कार्य करती हैं। जैसे व्यष्टि का सूर्य प्राण है वह उदय होकर चाक्षुष् प्राण को सक्रिय करता है। पृथिवी में देवतारूपी आकर्षक शक्ति शरीर में अपान रूप है। आकाश की शक्ति शरीर में समान वायु रूप है। वायु की शक्ति व्यान है और अग्नि उदान है। छान्दोग्योपनिषद में प्राणविद्या के ज्ञान वाले मनुष्य की शक्ति का उल्लेख है कि वह शुष्क वृक्ष में पल्लव निकाल सकता है। चैतन्य महाप्रभु प्राण शक्ति की पूर्ण जागृति से इस शक्ति से युक्त थे। कृष्ण! कृष्ण!! कहते हुए दिव्योन्माद में किसी सूखे वृक्ष का आलिंगन करते तो उसमें उनके स्पर्श से चेतना दौड़ जाती और नूतन पल्लव फूटने लगते।

(क्रमशः)

* * *

किमस्ति योगः

रचनाकार : **द्वारका प्रसाद शर्मा**, लखनऊ।

(१) ध्यात्वा सद्गुरोश्चरणौ, साष्टाङ्ग विनमय्य च।
कृपार्णवात्प्रसादेन, व्याख्यातुम हमुत्सहे॥

सद्गुरुदेव के श्री चरणों को ध्यान में रखते हुए तथा उन्हें साष्टांग नमन करते हुए, उन्हीं कृपासागर की कृपा से मैं पातञ्जल योग सूत्रों की व्याख्या करने का साहस कर रहा हूँ।

(२) त्रीण्येव सूत्राणि पुनः, अधस्तान्यङ्किततानि च।
प्रगृह्य बद्धश्लोकेभ्यः, यथापूर्वं कृतोद्यमः॥

साधन पाद के क्रमागत निम्नांकित तीन सूत्रों को लेकर पूर्व की भांति अपने श्लोकों में आबद्ध करते हुए हिन्दी भाषानुवाद सहित प्रस्तुत करने का यह प्रयास कर रहा हूँ।

एतानि सन्ति तानि सूत्राणि–

ये हैं वे तीन सूत्र–

(१) हेयं दुःख मनागतम्।

(२) द्रष्टदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।

(३) प्रकाश क्रिया स्थितिशील भूतेन्द्रियात्मक भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

(३) प्राग्जन्मसु नैक विभिन्नयोनिषु, दुःखान्यनन्तानि विषेहिरे नरः।
भुक्तानि दुःखानि गतानि तानि, न हेय संज्ञानि च तानि सन्ति॥

इस जन्म से पहले अनेक योनियों में अनन्त दुःख भोगे जा चुके हैं। वे समाप्त हो गये। वे हेय नहीं हो सकते।

(४) अन्यानि दुःखानि च जन्मनीह, भुक्तिं च येषां वयमत्र कुर्मः।
भुक्त्वा समाप्स्यन्ति स्वतश्च तानि, नहिन्त्यपाकर्तुमतस्त्वुपायः॥

वर्तमान दुःख तो इस जन्म में भोगे जा रहे हैं, वे भोग पूरा होने पर स्वतः समाप्त हो जायेंगे। अतः उसके भी उपाय करने की आवश्यकता नहीं है।

(५) एतद विचार्यैव महर्षिणोक्तं, दुःखानि तान्येव हयनागतानि।
हेयानि तान्येव विवेकिनां कृते, विवेकिनस्तानि विदूरयन्ति।

इसी को ध्यान में रख महर्षि पतञ्जलिदेव का कथन है कि आने वाले दुःख जो अभी तक प्राप्त नहीं है विवेकी उसे विवेक–ज्ञान द्वारा उन्हीं दुःखों को दूर करने का यत्न करते हैं।

(६) विवेकज्ञानेन यदा समूलं, विवेकिनस्तानि समुच्छिनन्ति।
विनश्य नैतानि समुद्भवन्ति, निरङ्कुराः किं प्रभवन्ति साङ्कुराः।।

विवेक–ज्ञान के द्वारा जब वे समूल नष्ट हो जाते है तो फिर वे अङ्कुरित नहीं होते। निरङ्कुर भी क्या कभी साङ्कुर हो सके हैं।

(७) एवं यदा नाशमुपैन्ति क्लेशाः, अपेक्षमाणाश्च भविष्यकाले।
नैतेतु प्रभवाः पुनरूद्भवाय, हेया अतो भावि समस्त क्लेशाः।।

अतः भविष्य में होने वाले दुःख कट जाते है तो फिर अङ्कुरित नहीं होते। अतः भविष्य में होने वाले दुःख हेय है।

(८) नवीन सूत्रे तु महर्षिणोक्तं हेयस्य दुःखस्य किमस्ति कारणम्।
तदेव स्पष्टीकरणाय रचितं, सूत्रमधस्ताल्लिखितं विचार्य।।

अग्रिम सूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने हेय दुःख का क्या कारण है उसी को स्पष्ट करने के लिये ही निम्न सूत्र की रचना की है।

सूत्रम्– द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।

इस सूत्र का अर्थ है द्रष्टा और दृश्य का संयोग हेयहेतु त्याज्य दुःख का कारण है।

(९) द्रष्टुर्दृश्यस्य संयोगो, हेयहेतुर्निगद्यते।
अतएव त्याज्य एषोऽपि, प्रयत्नात् साधकेन वै।।

द्रष्टा और द्रश्य का संयोग ही हेय–हेतु कहा गया है। अतएव यत्नपूर्वक इसका भी परित्याग साधक को करना चाहिये।

(१०) द्रष्टा जीव इति ख्यातः, चेतनः स उदीरितः।
दृश्यं तु सकला प्रकृतिः, कथिता त्रिगुणात्मिका।।

द्रष्टा जीव पुरुष है एवं चेतन है। दृश्य यह समस्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति है।

(११) प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
भोग्यानीन्द्रियैः सर्वं, जड एव प्रकीर्तितः।।

प्रकृति द्वारा त्रिगुणों के माध्यम से कार्यभूत इन्द्रिय रूप भोग के विषय हैं तथा जड हैं।

(१२) उभयोरेव संयोगो, जडग्रन्थिरितीर्यते।
सैवास्ति दुःखदा नित्यं, भवकूप निपातिनी।।

इन दोनों का संयोग ही जडग्रन्थि है। यही नित्य दुःख देने वाली तथा संसार चक्र में घुमाने वाली है।

(१३) शुद्धो बुद्धो ह्येष आत्मा, सम्पृक्तश्चित्तवृत्तिभिः।
सारूप्यं भजते तावत्, चित्तवृत्तिस्तु यादृशी।।

जड़–चेतन की गांठ पड़ने पर यह शुद्ध व बुद्ध आत्मा अपनी चित्त की वृत्तियों के अनुरूप ही अपने को मानने लगता है।

(१४) तत् तथैव, दर्पणस्य, समक्षं वस्तु यत्स्थितम्।
तत् तथा भासते वस्तु, यद् रूपं च यथाकृतिः।।

वह उसी प्रकार है जैसे किसी दर्पण के समक्ष किसी वस्तु को हम रख देते हैं तो वह वस्तु जिस रूप की होती है और जिस आकार की होती है वैसे ही परिलक्षित हुआ करती है।

(१५) एवमात्मा दर्पणे याः, चित्तवृत्तय आस्थिताः।
आत्म संसर्गक्त्वात्ताः, आत्मालोकात्प्रकाशिताः।।

इस प्रकार आत्मा रूपी दर्पण में वृत्तियों का दर्शन होने से आत्मा भी अपने आप को वैसे ही मानने लगती है। आत्मा के संसर्ग से वे चित्तवृत्तियां आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हुआ करती हैं।

(१६) पुरूषं प्रकृतिं चापि, तत्वतो वेत्ति यः पुमान्।
अतिक्रम्य तु दुःखानि, कैवल्यां स्थितिमेति सः।।

पुरूष (द्रष्टा) और प्रकृति (दृश्य) को तत्व रूप में जो विवेकवान पुरूष जान जाता है, वह दुःख को त्यागकर, भवबन्धन के दुःख से मुक्त होकर कैवल्य स्थिति को प्राप्त करता है।

अग्रिमं सूत्रम्– अगला सूत्र है–

प्रकाश किया स्थितिशील भूतेन्द्रियात्मक भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

जो प्रकाश, किया, स्थिति स्वभाव रूप अर्थात् सत, रज तमोगुण रूप हैं तथा भूत व इन्द्रियात्मक स्वरूप तथा भोग, अपवर्ग (मोक्ष) जिसका प्रयोजन है, वह दृश्य है।

(१७) द्रष्टुः स्वरूपं तत्कार्यं, किमस्ति तत्प्रयोजनम्।
सूत्रेऽस्मिन्नस्ति व्याख्यातः, पतञ्जलि महर्षिणा।।

द्रष्टा का क्या स्वरूप है, उसका क्या कार्य है, तथा उसका क्या प्रयोजन है। महर्षि पतञ्जलि ने इस सूत्र में उसी को बताया है।

(१८) गुणास्त्रयः कियास्तेषां, दर्शनं श्रवणं तथा।
बुद्धिगम्यं च यद याति, तत्सर्वं दृश्यमेव हि।।

तीनों गुण, सत, रज तम और इनके कार्य जो देखने, सुनने समझ में आते हैं, वह सभी दृश्य हैं।

(१९) प्रकाशं च प्रवृत्तिं च, मोहमालस्य मेव च।
सत्वं रजश्ल तमसां, गुणा मुख्याः प्रकीर्तिताः।।

सत्व गुण का मुख्य धर्म प्रकाश, रजोगुण का मुख्य गुण क्रिया, चंचलता है, तमोगुण का मुख्य धर्म चंचलता है व जड़ता है।

(२०) अन्योन्याश्रय भूतास्ते, गुणा भिन्नस्वरूपिणः।
वर्तन्ते जीवमात्रेषु, प्रकृतौ समतां गताः।।

ये सब गुण एक दूसरे के आश्रयभूत और भिन्न–भिन्न हैं। इन तीनों गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं।

(२१) स्थूला वृत्तयः पंच, पंचैव तन्मात्रकाः।
कर्मज्ञानेन्द्रियाणि च, पंच पंचाभिधाः स्मृताः।।

(२२) मनोबुद्धिरहङ्कारा, त्रयोविंशति संज्ञकाः।
तत्वा गुणास्तुते सर्वे, कुर्वते ददते च यत्।।

पाँच स्थूल वृत्तियाँ, पाँच तन्मात्रा, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, और मन, बुद्धि, अहंकार ये २३ तत्व, इन्हीं गुणों के कार्य, इन्हीं के भिन्नि रूप हैं जो अपना कार्य करते रहते हैं और प्रदान करते हैं। क्या–

(२३) भोगासक्तं तु भोगांस्ते, मोक्षकायं ते मोक्षणम्।
एतत्प्रयोजनं सर्वं, सूत्रेऽभीष्टं महर्षिणा।।

ये त्रिगुण भोगासक्त को अपना स्वरूप दिखलाकर भोग देते हैं। मोक्ष के इच्छुक लोगों को मोक्ष देते हैं। यह उसका प्रयोजन है।

(२४) मूर्ध्नाप्रणम्य चरणौ, श्री गुरूणां पुनः पुनः।
विरमे लेखनात् यावत्, नावङ्को न प्रकाशते।।

श्रीगुरुदेव के चरणों में बारम्बार प्रणाम करते हुए अब इस लेख को सिद्धयोग के नवीन अङ्क में इसके प्रकाशित होने के समय तक विराम दे रहा हूँ।

जय गुरूदेव!

स्वयंब्रह्म योगेश्वर परमप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की दिव्य प्रेरणा

योग और विश्व कल्याण

राजेश कुमार श्रीवास्तव 'राजू'

(गतांक से आगे)

ऐसा भी नहीं है कि प्राचीन अर्थात् पूर्ववर्ती समय के सभी सिद्धान्तों व सभी प्राचीन पुरुषों को, श्रेष्ठ ही समझा जाये। पूर्व समय में भी योगविहीन लोगों ने सम्यक् ज्ञान के अभाव में अनेक धार्मिक मान्यताओं को कुछ का कुछ करके उनके स्वरूप और उपयोगिता में भारी परिवर्तन कर दिया। जैसे—पति में विशुद्ध प्रेम रखने वाली पतिव्रता स्त्रियों ने अकस्मात विधवा होने पर जब अपने पति के शव के साथ ही हठपूर्वक जलना स्वीकार किया, प्राचीन समाज ने उस समय की विधवा स्त्रियों को, इस प्रकार स्वहठपूर्वक सतीत्व प्राप्त करने की स्वीकृति दे दी। सती होने में उनकी स्वेच्छा ही उनके विशुद्ध—निर्मल पतिप्रेम की भावनाओं को प्रमाणित करती है तत्कालीन विज्ञ पुरुषों ने ऐसी विधवा स्त्रियों का महान त्याग देखकर उन्हें देवी का रूप प्रदान किया, इस प्रकार 'सती' स्त्रियों का परिवार भी समाज की दृष्टि में अत्यन्त सम्मानीय और स्तुत्य हो गया जो कि उन सती स्त्रियों के प्रेम और त्याग को देख कर न्यायोचित भी था। धीरे—धीरे दीर्घ समयोपरान्त 'सतीप्रथा' धार्मिक कट्टर लोगों में, सामाजिक प्रतिष्ठा और कुल की मर्यादा की वस्तु बन गयी। फलस्वरूप अज्ञानी धार्मिक (योगविहीन) लोग अपने घर की विधवा महिलाओं को उनकी इच्छाओं के विरुद्ध जबरदस्ती उनके पतियों के शव के साथ अग्नि में झोंकने लगे। कितना हृदय विदीर्ण होता होगा वह घृणित दृश्य जिसके अपार दुःख की कल्पना मात्र से ही संतवृत्तीक लोगों को सांसारिक जीवन से विरक्ति होने लगती है। सैकड़ों—सहस्रों वर्षों की दीर्घ समयावधि के विशाल विस्तार में 'सती' के अस्तित्व की मूलाधार भावना (पति के प्रति अटूट प्रेम) तथा समाज से प्राप्त प्रतिष्ठा का कारण (उनका देह त्याग) दोनों ही विलुप्त हो गये और 'सती होना' धार्मिक समाज में 'धर्म' का एक आवश्यक कर्तव्य कर्म बन गया। जिसे संसार में 'सती प्रथा' के रूप में स्थान प्राप्त हुआ। दुःख इस बात का है कि समाज की द्रष्टि में धार्मिक लोग ही ऐसे जघन्य अपराधों को अपना धर्म समझ कर करते थे न करने पर 'धार्मिक रूप में मिली सामाजिक प्रतिष्ठा के खोने का भय बना रहता था। उस समय के धार्मिक समाज में अज्ञानता

> *मैं सतियों की निन्दा नहीं करता हूँ सतियाँ वन्दनीय शक्ति स्वरूप हैं। किन्तु पति के प्राणों के साथ यदि सती के भी प्राण निकलते हैं तो यह सतीत्व है ! किन्तु पति के मर जाने के बाद जबरदस्ती उसे चिता में तारों से बाँध कर बैठा दिया जाता है। यह तो ठीक नहीं है यह तो एक प्रकार की हत्या है।*
>
> —पूज्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज।
> गुरुदेव वचनामृत से (प्रथम भाग)

के कारण यह धारणा बन गई थी कि विधवा स्त्रियों को सती न होने पर, वे पर पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट करके धार्मिक लोगों के ब्रह्मचर्य व्रत में बाधा पहुँचा कर समाज को कलंकित कर सकती हैं। अतः स्वयं सती न होने पर इन्हें बल पूर्वक सती बना देना चाहिए। अनेक स्थानों पर तो विधवा के घरवालों को इस कार्य में सक्षम न पाकर, समाज के कट्टर धार्मिक लोग एकत्रित होकर विधवा को घसीटते हुये उसे सती होने के लिए विवश करते थे।

जिस धार्मिक कर्म में अहिंसा व्रत की मर्यादा का उल्लंघन होता हो क्या उसे 'धर्म' कहा जा सकता है ? यह तो केवल 'अधर्म' ही है। केवल श्रद्धा ही कितना भेद पैदा कर देती है। पहले प्रकार के 'सतीत्व' में विधवा की अपने पति में अटूट श्रद्धा है और सती होने का हठ है। दूसरी स्थिति में विधवा की पति में प्रबल अर्थात् एक प्राणरूप श्रद्धा न होने से, सती होने की उसमें कोई भावना नहीं है। ऐसी विधवा स्त्री को सती बनाने हेतु अग्नि में बलपूर्वक समर्पित करना केवल उसकी हत्या करना है।

यहाँ सती प्रथा पर व्याख्यान करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं तो इसके माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि वह कौन सा कारण है जिसके अभाव में मनुष्य की बुद्धि इतनी विपरीत हो जाती है। इसका एक मात्र कारण केवल लोगों के हृदय में योग विद्या का अभाव है। योग शक्ति विहीन व्यक्ति धार्मिक होते हुये भी अर्थात ईश्वर सत्साहित्यों धर्म, भक्ति और भजन के साथ–साथ कर्मकाण्डों में गहरी आस्था को प्राप्त होकर भी ज्ञानस्वरूप अन्तः चक्षुओं से रहित होते हैं और तब संशय मुक्त बुद्धि का संयोग पाकर, सतीप्रथाओं जैसी ही अनेक नृशंस, निरर्थक सामाजिक प्रथाओं को आवश्यक समझ कर उनके क्रियान्वयन के लिए तत्पर रहते हैं। योगशक्ति विहीन अज्ञानी धार्मिक पुरुष 'धर्म' की सुरक्षा करते–करते कब 'अधर्म' की सुरक्षा करने लग जाते हैं इस बात का उन्हें कोई ज्ञान ही नहीं रहता बिल्कुल उसी प्रकार से जैसे बचपन में गाय के दूध में आनन्द लेने वाला बच्चा धीरे–धीरे बड़े होने पर कुसंगति में पड़कर कब शराब पीने लगता है।

उसे इस बात का कोई ज्ञान नहीं रहता। माता–पिता की असावधानी में कुसंगति के कारण जैसे कोई बालिक अन्जाने ही शराबी या जुआरी बन जाता है ऐसे ही योग विद्या के अभाव में, उचित–श्रेष्ठ भोगपरक सिद्धान्तों के द्वारा धर्मपालन न होने से, मनुष्य धर्म–ज्ञान के वास्तविक नियमों से हटता चला जाता है और अपनी बुद्धि द्वारा दिये धर्म अथवा अपने प्रिय लोगों के द्वारा निर्देशित धर्म का ही आचरण करता है।

स्पष्ट है, प्रत्येक युग में, समय–समय पर ऐसे सत्पुरुषों के साथ–साथ अज्ञानी दुष्ट पुरुष भी जन्मते रहे हैं जिनकी संगति श्रेष्ठ सत्पुरुषों द्वारा अपेक्षित रहती है। हमारे पूर्वजों ने जहाँ उत्कृष्ट ज्ञान देकर लोक कल्याण का महान कार्य किया, वहीं कुछ धर्म का प्रदर्शन करने वाले शैक्षिक योग्यता (संस्कृत भाषा आदि का ज्ञान) में निपुण किन्तु योगारूढ़ न होने से अज्ञानता को प्राप्त धार्मिक कट्टर वादी लोगों ने विशेष ख्याति–यश पाने की तीव्र लालसा में अपने मिथ्या मनगढ़न्त सिद्धान्तों पर आधारित साहित्य लिख डाले जो मानवहित में कदापि उपयोगी नहीं है। इन्हीं लोगों से रूढ़िवादिता का जन्म हुआ।

संसार में असंख्य रूढ़ियों–अंधविश्वासों का प्रचलन है। पढ़े–लिखे समाज द्वारा इन सामाजिक बुराइयों की अवज्ञा–आलोचना करना तो मानव हित में अति आवश्यक व प्रशंसनीय है। किन्तु आधुनिक

ज्ञानाधिक्य के अभिमान में आकर, गीता, महाभारत, राम चरित मानस, पुराणादि महायोगियों के द्वारा रचित ग्रन्थों को भी यदि कोई पाश्चात्य संस्कृति में प्रेरित अज्ञानी, निन्दा–आलोचना की श्रेणी में रखता है और हमारे वन्दीय–पूज्यनीय पूर्वजों के नाम को धूमिल करने के प्रयास करता है तो यह मेरे मन को सहन नहीं होता।

आज स्थिति यह है कि मनुष्य देहाभिमान से उत्पन्न अज्ञानता के कारण धर्म, ज्ञान, भक्ति, भोग और संत-आदि सभी अध्यात्म विषयक विषयों को उनके यथार्थ रूप में देखने में सक्षम नहीं है। वह निरामूर्ख अभिमानी अपने अन्धकारपूर्ण चक्षुओं से भ्रमित–अज्ञानतापूर्ण बुद्धि का आश्रय लेकर 'धर्म' को 'अधर्म' समझ रहा है और अधर्म को धर्म; जो संत हैं उन्हें लुटेरा कह रहा है, जो लुटेरे (तांत्रिक आदि) हैं उन्हें सन्त समझकर उनमें अपनी गहरी आस्था प्रकट कर रहा है।

मुश्किल यह पैदा होती है कि यह किस प्रकार समझा जाये, कि कौन से प्राचीन सिद्धान्त और उनके अविष्कारक (योगी, सिद्ध, ऋषि, मुनि आदि) उचित और ग्रहण करने योग्य हैं ? कौन से अनुचित और अपेक्षित ? क्यों है ? किस प्रकार से है ? यही स्थिति वर्तमान समय में अर्थात् इस घोर कलिकाल में पहले से भी अत्यधिक जटिल होकर सामने आ रही है। सत्व, रज और तम के परस्पर संयोग से मनुष्यों का मूल स्वभाव और बुद्धि दोनों ही अति संशय और भ्रम पैदा करने वाले हैं। कौन सा गुरु श्रेष्ठ है ? कौन सा सम्प्रदाय श्रेष्ठ है ? सही धर्म क्या है ? गुरु क्यों बनाया जाय ? आदि प्रश्नों को लेकर लोग भाँति–भाँति की चर्चाएँ करते नजर आते हैं किन्तु प्रत्युत्तर में कहीं से भी कुछ नहीं प्राप्त होता। इधर–उधर भटककर कहीं थोड़ी देर के लिए स्थिर होते भी हैं तो कुछ समय बाद धोखा खाकर पूर्व प्रश्नों में पुनः उलझ जाते हैं। यह स्थिति सत्वगुणी लोगों की है जो उचित गुरु प्राप्त होने पर ही सन्तुष्ट होते हैं। जिन लोगों में रज और तम का आधिक्य है और सत्व अत्यन्त गौण है ऐसे भाग्यहीन लोगों को तत्काल अपने मनोनुकूल गुरु और धर्म प्राप्त हो जाते हैं जहाँ वे जिन्दगी भर ठगे जाते हैं। वे मूर्ख लोग सच्चाई से अनभिज्ञ रहकर, श्रेष्ठ सन्तों–महापुरुषों में दोष निकालते रहते हैं और जिनसे अपना पीछा छुड़ाना चाहिए उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते।

उपरोक्त प्रश्नों के यथार्थ उत्तरों को वही व्यक्ति प्रत्यक्ष कर सकता है जिसने योगारूढ़ होकर सतोगुण में वृद्धि करके सम्यक् ज्ञान (जानने योग्य अर्थात् यथार्थ ज्ञान) प्राप्त कर लिया है अथवा प्राप्त करने के प्रयास कर रहा है। 'सम्यक् ज्ञान' योग मार्ग पर आरूढ़ योगियों की प्रारम्भिक उपलब्धियों में से एक है जिसके अन्तर्गत मनुष्य के संशयों का जैसे–जैसे उन्मूलन होता जाता है वैसे ही वैसे उसे प्रकृति के तात्विक ज्ञान का अनुभव होता चला जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में, मनुष्य जन्म क्यों ? मृत्यु क्यों ? दुःख क्यों ? आदि भेदों का यथार्थ ज्ञान होता चला जाता है। इसके विस्तार का कोई निश्चित आकार नहीं है। 'योग' जैसे–जैसे अपनी उत्तरवर्ती उच्च भूमिकाओं में पहुँचता जाता है, 'सम्यक् ज्ञान' भी योग की उच्च भूमिकाओं के अनुरूप ही अपने आकार को प्राप्त कर लेता है और योगी को उसी स्तर का ज्ञान प्रत्यक्ष कराता है। इसे प्राप्त करने के लिए आत्मज्ञान (आत्म स्वरूप का ज्ञान) की प्राप्ति की चेष्टायें (योगाभ्यास) अवश्य करनी चाहिए। अर्थात योगी बनना चाहिए।

आत्मज्ञान सम्बन्धी योग साधनाओं से

लोक–परलोक दोनों पर विजय प्राप्त हो जाती है जबकि सांसारिक विषयों से सम्बद्ध मनुष्य के हित और अहित की ज्ञानानुभूति तो योगसाधना की प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही प्राप्त होने लगती है। भद्दी सूरत वाले महान सुकरात अपने देश के नवयुवकों से अपने आत्मिक सौन्दर्य से युक्त यही तो उपदेश करते थे– "हे मेरे प्यारे युवा पुरुषों ! थोड़ा सा साहस बटोरो ताकि मनोबल न कमजोर हो। तुम उतने कमजोर और दुर्बल नहीं हो जैसी तुम कल्पना करते हो। तुम्हारा वह बौद्धिक ज्ञान व्यर्थ है जो तुम्हें इतना भी बोध न करा सके कि जो माता–पिता तुम्हारा पालन–पोषण करते हैं उनके द्वारा दिया गया मार्ग दर्शन तुम्हारे लिए उपयुक्त है अथवा नहीं तुम्हारे गुरू द्वारा दिया गया ज्ञान तुम्हारे आत्मिक और व्यवहारिक विकास के लिए शुभ है अथवा नहीं ? तुम्हारे देश का राजा और उच्च पदाधिकारी तुम्हारे लिए श्रेष्ठ कर्म करते हैं अथवा तुम्हें धोखा दे रहे हैं ? यही सब बातों को जब तुम ठीक तरीके से उनके वास्तविक स्वरूप में समझोगे तो तुम्हारी सफलताओं का मार्ग कभी अवरुद्ध नहीं होगा। अतः अपने संशयों को दूर करने के लिए तुम स्वयं को, आत्म स्वरूप को जानने की कोशिश करो तभी तुम यह भलीभाँति जान सकोगे कि क्या सही है और क्या गलत है। इस प्रकार महात्मा सुकरात अपने प्रियजनों को 'सम्यक् ज्ञान' प्राप्त करके योगी बनने के लिए ही उत्साहित करते थे।

तुमने बेटी, मोहल्ले की चर्चित सर्वहित चाहने वाली महिला, पण्डितानी बूआ को रहन–सहन, वाणी–व्यवहार, शिक्षा आदि से साधारण देखकर उसे अयोग्य और उपेक्षित समझ लिया किन्तु तुमने उस महिला के सुन्दर मन को नहीं देखा जो सत्ववृत्तीक (सद्‌गुणों से सम्पन्न है) यही तुम्हारी योग विहीनता का सबसे बड़ा दोष है। मन को एकाग्र न कर सकने वाला संसार का प्रत्येक मनुष्य इसी महान दोष के वशीभूत होकर 'राग–द्वेष' की कर्मबन्धन स्वरूप कितनी फांसियों के कठोर फन्दों में नित्य बँध रहा है, अकथनीय है। निम्न सुन्दर शब्दों को पढ़ने पर यह मन विषयक तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है–

"इस चंचल मन को साधना, रोकना ही साधना है मन को जो साधे वही सच्चे अर्थों में साधु है। मन को साधना या रोकना और रोककर उसे अपने अनुसार चलाना यही तो योग साधना है। संसार तो मन की कल्पना है। मनुष्य का मन ही मनुष्य को भला–बुरा साधु–असाधु बनाता है। मनुष्य अपने शरीर को तो सुन्दर बना लेता है किन्तु मन को स्वच्छ सुन्दर नहीं बनाता। सतगुरु, सतपुरुष और सतसंग से मन निर्मल होता है और निर्मल शुद्ध मन ही गुरुदेव और भगवान को अच्छा लगता है।" कहा भी है–

निर्मल मन जन सो मोहियावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

ब्र. ओम प्रकाश जी महाराज, लखनऊ

(क्रमशः)

भूल–सुधार

दोषपूर्ण प्रूफरीडिंग के कारण गतांक में इस लेख के लेखक श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव 'राजू' के स्थान पर राकेश कुमार श्रीवास्तव 'राजू' प्रकाशित हो गया है। जिसका हमें खेद है।

–सम्पादक

सृष्टि के अनादि महान कर्मयोगी

भगवान सूर्यनारायन

ले. ब्र. ओमप्रकाश

भगवान सूर्य नारायण सबके लिए उपास्य हैं। यद्यपि ईश्वरीय सृष्टि में देवी–देवों की संख्या करोड़ो में है, पर इनमें से कोई भी देवी या देवता प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता। मात्र भगवान सूर्य ही एक ऐसे देव हैं जिनका प्रत्यक्ष दर्शन–प्राणिमात्र को नित्य होता है। वेदमाता गायत्री में जहाँ निखिलान्तरात्मा, सर्वद्रष्टा एवं सर्वज्ञ भगवान श्री सर्वेश्वर का प्रतिपादन है, वहाँ सविता नाम से महाभाग सूर्य का भी परिबोध है। गायत्री–मन्त्र द्वारा ऋषियों ने उदीयमान सूर्य की सविता रूप में प्रार्थना की **''भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्''**। अर्थात हे सवितः। हम आपके तेजस्वी स्वरूप का ध्यान करते हैं। वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा प्रदान करे। देवस्य भर्गः प्रकाश देने का काम आचार्य का है वैदिक काल में ही सूर्य को आचार्य रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। गायत्री के 'धियो यो नः प्रचोदयात' के द्वारा सूर्य देव का गुरुत्व, ब्रह्मचारी और आचार्य के सम्बन्ध में प्रस्फुटित हुआ है। गायत्री आदित्य में प्रतिष्ठित है। गायत्री सूर्योपासना का प्रथम सोपान है। भगवान् सूर्य का एक नाम सविता है। ब्रह्म गायत्री **'ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचो दयात्**। सूर्य का हम ध्यान करें और उस सविता की अर्थात् आदित्य या सूर्य के भर्ग की पाप मार्जनकारी तेज की तथा वीर्य की हम चिन्ता करें। वह भर्ग श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है वे सविता जगत जन्म दाता है, उन्हीं से जगत् की सृष्टि हुई है। वे सविता हमें सब कुछ दे रहे हैं। हमें प्राण दे रहे हैं, हमारा पालन पोषण कर रहे हैं। यही है सविता का तेज। सविता भगवान सूर्य के शरीराभिमानी देवता है। हम सब की बुद्धि को तथा सब प्रकार के परम पुरुषार्थ को जिसमें धर्म, अर्थ एवं काम गौण हैं और मोक्ष मुख्य है प्रदान करते हैं। वेदों में **''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', 'हशे विश्वाय सूर्यम्''** अर्थात् समस्त जगत के आत्मा रूप में सूर्य है। तथा सारे संसार के दृष्टि दाता सूर्य हैं–आदि विस्तार से विवेचित है। ऋग्वेद के ऋषियों ने अनुभव किया कि **''सूर्यो वै प्रज्ञानां चक्षुः''** जीवों की आँखों के मूलाधार सूर्य है, वह मनुष्यों का ही नहीं, देवताओं की भी आखें है। भगवान सूर्य परमात्मा नारायण के साक्षात प्रतीक हैं। सर्ग के आदि में भगवान नारायण ही सूर्य रूप में प्राप्त होते हैं। तभी तो सूर्य की गणना पञ्च देवों में है। सन्ध्योपासना में सूर्य रूप से ही भगवान की आराधना की जाती है।

श्री मद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण ने भी विभूति स्वरूप के वर्णन में–**'ज्योतिषां रविरंशुमान'**–से स्वयं को ही इंगित किया है। प्रश्नोपनिषद के **'स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः'** इस वचन से यह

प्रतिपादन किया गया है कि वे अखिलान्तरात्मा श्रीप्रभु तेजोमय सूर्यरूप में भी प्रतिष्ठित हैं। पातञ्जल योग सूत्र में वर्णित है कि **''भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात्''** अर्थात् सूर्य के ध्यान करने से ही निखिल भुवन का ज्ञान प्राप्त होता है। तथा पूत पुण्यात्मा धीरपुरुष भी सूर्य मार्ग से ही श्रीभगवद्धाम एवं मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। भगवान सूर्य सत्य धर्मा एवं प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों के साक्षी हैं। वह सत्य लोक के अधिपति एवं विशुद्ध सत्य के प्रकाशक हैं। अतएव इसीलिए उन्हीं से **'सत्य'** को आवृत करने वाले हिरण्मय आवरण को दूर करने के लिए प्रार्थना की गई है। भगवान सूर्य सर्वगत नित्य एवं सनातन हैं। सूर्यमण्डल में ब्रह्म की उपासना का विधान महानारायणोपनिषद् में मिलता है। इसी उपनिषद में सूर्य के प्रसिद्ध अष्टाक्षर बीज मंत्र **'ॐ घृणि: सूर्य आदित्य:'** उस ब्रह्म का ज्योतियों की ज्योति एवं शुभ्र तेज के रूप में वर्णन मिलता है। क्रम मुक्ति के अधिकारी योगी का प्राण हृदस्थ सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से होकर ब्रह्म रन्ध्र से उत्क्रान्त होते हैं एवं सूर्य रश्मियों के द्वारा देवयान मार्ग से ले जाये जाकर सूर्य द्वार से ब्रह्म लोक में प्रविष्ट होते हैं। सूर्य को मोक्ष द्वार, स्वर्ग द्वार के नाम से पुकारा गया है। उत्तरायण में सूर्य के होने पर मरने वाले ब्रह्म लोक को प्राप्त होते हैं। उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा में भीष्मपितामह ने अट्ठावन दिन शर शय्या पर व्यतीत किए। श्रुति के अनुसार दक्षिणायन सूर्य के समय प्राण विसर्जन होने से पुन: जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

सृष्टि के महान निष्काम कर्म योगी भगवान सूर्य नारायण हैं। योगेश्वर श्री कृष्ण ने योग की शिक्षा सर्व प्रथम सूर्य नारायण को ही दी थी, उस दिव्य निष्काम कर्म योग की शिक्षा को तबसे वे नित्य, निरन्तर नियमित रूप से गतिशील रहकर सम्पूर्ण संसार को कर्म करने का पथ–प्रदर्शन करते चले आ रहे हैं। गीता में भगवान स्वयं कहते हैं **''इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान हमव्ययम्''** सृष्टि के प्रारम्भ में कर्म योग का उपदेश भगवान ने इसलिए दिया था कि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में संसार में अनेक कर्म होते हैं किन्तु वे उन कर्मों से बँध नहीं सकते क्योंकि सूर्य के प्रकाश में भले ही वे कर्म होते है, परन्तु सूर्य का उन कर्मों से अपना कोई सम्बन्ध नहीं होता। वैसे ही चेतन की साक्षी में सम्पूर्ण कर्म होने से (कर्म) बन्धन कारक नहीं होते। हाँ उनसे यदि सुख–चाह का थोड़ा सा भी सम्बन्ध होगा तो वह अवश्य ही बन्धन कारक हो जायेगा। जैसे सूर्य में कर्मों का भोक्तापन नहीं है वैसे ही कर्त्तापन भी नहीं है। साथ–साथ नियत कर्म का किसी भी अवस्था में त्याग न करना तथा नियत समय पर कर्म के लिए तत्पर रहना भी सूर्य की अपनी विलक्षणता है। जैसे–**''यथा प्रकाशयत्येक: कृत्स्नं लोक मिमं रवि:''**। (गीता १३/३३) कर्म योगी को भी इसी प्रकार अपने नियत कर्मों को नियत समय पर करने के लिये तत्पर रहना चाहिये। इसलिए कर्मयोग का वास्तविक अधिकारी सूर्य देव को जानकर ही योगेश्वर श्री कृष्ण ने उनको ही सर्व प्रथम कर्मयोग का उपदेश दिया था। सृष्टि में जो सर्व प्रथम उत्पन्न होता है उसे ही कर्त्तव्य का उपदेश दिया जाता है। उपदेश देने का तात्पर्य है कर्त्तव्य का ज्ञान कराना। सृष्टि काल में सर्व प्रथम सूर्य नारायण की उत्पत्ति हुई और फिर सूर्य के समस्त लोक उत्पन्न हुए। हमारे शास्त्रों में सूर्य को **'सविता'** कहा गया है जिसका अर्थ है–उत्पन्न करने वाला।

"अग्नौ प्रास्ताहुति सम्पनादित्य मुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नंतत: प्रजा:।।

(मनुस्मृति ३—७६)

अर्थात, अग्नि में सम्यक प्रकार से समर्पित आहुति सूर्य तक पहुँचती है। सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्य से प्रजा उत्पन्न होती है। पाश्चात विज्ञान भी सूर्य को सम्पूर्ण सृष्टि का कारण मानता है। सबको उत्पन्न करने वाले सूर्य नारायण को सर्व प्रथम कर्मयोग का उपदेश देने का अभिप्राय उनसे उत्पन्न सम्पूर्ण सृष्टि को परम्परा से कर्मयोग सुलभ करा देना था। योगेश्वर श्री कृष्ण के द्वारा दिए गए कर्मयोग के उपदेश को सूर्य नारायण ने पालन किया। फलस्वरूप यह कर्म योग परम्परा को प्राप्त होकर कई पीढ़ियों तक चलता रहा। सूर्य नारायण सम्पूर्ण जगत के नेत्र हैं उनसे ही सबको ज्ञान प्राप्त होता है एवं उनके उदय होने पर समस्त प्राणी जगत होकर अपने—अपने कर्मों में लग जाते हैं। सूर्य नारायण से ही मनुष्यों में कर्तव्य परायणता आती है। इसी अभिप्राय से भगवान सूर्य को सम्पूर्ण जगत की आत्मा कहा है। **"सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च"** अतएव सूर्य नारायण को जो उपदेश प्राप्त होगा वह सम्पूर्ण प्राणियों को भी स्वत: ही प्राप्त हो जायेगा। इसीलिए योगेश्वर श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम सूर्यनारायण को कर्मयोग का उपदेश दिया। सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है। वर्षा के अधिष्ठान् देवता सूर्य हैं। वे ही अपनी किरणों से जल का आकर्षण कर उसे वर्षा के रूप में पृथ्वी पर बरसाते हैं। इसीलिए सम्पूर्ण प्राणियों का जीवन भगवान सूर्य नारायण पर ही आधृत है। **सूर्य के आधार पर ही सम्पूर्ण सृष्टिचक्र चल रहा है।** सूर्य भगवान से संसार को शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार पृथ्वी से लिये गए जल को प्राणियों के हितार्थ सूर्य नारायण पुन: पृथ्वी पर ही बरसा देते हैं, वैसे ही राजाओं ने प्रजा से कर आदि के रूप में लिए गए धन को प्रजा के हित में ही लगा देने की उनसे शिक्षा ग्रहण की। सूर्य से ही यज्ञ, मेघ, अन्न और आत्मा का विकास होता है।

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु को 'नवग्रह' कहते हैं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा नक्षत्रों के स्वामी हैं। मंगल को पृथ्वी पुत्र, बुध को चन्द्रमा का पुत्र, बृहस्पति को देव गुरु, शुक्र को दैत्य गुरु शनि को सूर्य पुत्र एवं राहु, केतु, को पृथ्वी की छाया पुत्र माना गया है। सप्ताह में सूर्य वार (इतवार) चन्द्रवार (सोमवार) भौमवार (मंगल) बुधवार, शुक्रवार और शनिवार से सात वार यथा क्रम हैं जिनके नाम से वार प्रसिद्ध हैं, उनके अधिष्ठाता सूर्य आदि सात ग्रह आकाश में प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। उनमें सूर्य निरंजन—निराकार ज्योति स्वरूप परमात्मा की प्रत्यक्ष प्रतिमूर्ति है और चन्द्रादि छ: ग्रहों तथा अन्य सभी तारागणों को प्रकाशित करते हैं।

जीवन के सम्पूर्ण सुख—दु:ख लाभ हानि और जय—पराजय आदि विषय इन नव ग्रहों पर आधारित होते हैं क्योंकि जीवन को प्रभावित करने वाले आकाश्य सत्ताईस्स नक्षत्रों एवं बारह राशियों पर ये ग्रह सतत् भ्रमण करते रहते हैं जिससे प्रभावक ऋतुयें, वर्ष, मास और दिन रात बनते हैं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार नवग्रहों को बारह राशियों का स्वामी चुना गया हैं। इन ग्रहों की शान्ति के लिए सूर्य की सात किरणों से

उत्पन्न पत्थर इस प्रकार है। सूर्य ग्रह की शान्ति के लिए माणिक्य धारण करें। चन्द्रग्रह की शान्ति के लिए मोती धारण करें, मंगल ग्रह की शान्ति के लिए प्रवाल धारण करें, बुध ग्रह की शान्ति के लिए पुखराज धारण करें। शुक्र ग्रह की शान्ति के लिये हीरा धारण करें। शनि ग्रह की शान्ति के लिए नीलम धारण करें। राहु ग्रह की शान्ति के लिए फिरोजा धारण करें एवं केतु ग्रह की शान्ति के लिए लहसुनियाँ धारण करें। भगवान सूर्य अपनी शक्ति अपने कुटुम्ब के प्रत्येक सदस्य चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि आदि को देते हैं।

महर्षि कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से सूर्य देव का जन्म हुआ। सूर्य की पत्नी छाया देवी तथा पुत्र काक वाहन शनैश्चर और यम हैं। सूर्य राज रत्न माणिक्य के अधि देवता हैं, इनका रथ स्वर्णमय है जिसमें सात घोड़े जुते हैं, इस रथ के सारथि अरुण हैं सूर्य भगवान योगी हैं, संन्यासी हैं, आचार्य हैं गुरु हैं। सूर्य देव सबसे बड़े संन्यासी हैं क्योंकि वह सबको प्रकाश और प्राण, दान जीवन प्रदान करते हैं। प्रकाश देने का काम आचार्य का है। गुरु का है। प्रकाश से ही संसार की वस्तुओं का ज्ञान होता है। प्रकाश से ही ईश्वर की आत्मा का ज्ञान होता है। अन्यथा अज्ञान–अन्धकार में सब कुछ ढका रहता है।

कुन्ती माता ने सूर्य की आराधना करके उन्हीं के समान तेजस्वी पुत्र कर्ण प्राप्त किया था। सूर्य उपासना से ही द्रौपदी को ऐसा अक्षय पात्र मिला था जिसकी भोजन सामिग्री कभी समाप्त नहीं होती थी। हनुमानजी ने सूर्य नारायण से ही योग की शिक्षा प्राप्त की। जिसके फलस्वरूप उन्हें सूर्य का तेजांश प्राप्त हुआ और उन्हीं की कृपा से वे अष्ट सिद्ध नव निधि के अधिनायक बने थे। सीता जी ने बाल्मीकि के आश्रम में सूर्य साधना करके ही लव–कुश जैसे तेजस्वी बालकों को जन्म दिया था। राजा इक्ष्वाकु ने सूर्य साधना की, पुरातन योग की कल्प के आदि में सूर्य नारायण को श्री कृष्ण ने शिक्षा दी। वहीं से उनके वंशधर सूर्य वंशी कहलाते चले गए। शकुन्तला ने अपनी परित्यक्ता-स्थिति में सूर्य साधना करके चक्रवर्ती भरत को जन्म दिया। भगवान राम सूर्य वंशी थे। **'उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग''** अर्थात् सूर्य वंश का सर्वोज्जवल प्रकाश श्री राम रूप में हुआ है। रघुवंश या सूर्यवंश के राजा दशरथ व उनके पुत्र श्री राम के इष्ट देव या आदि देव भगवान सूर्य ही रहे। श्री राम और अर्जुन ने आदित्य हृदय स्रोत का पाठ करके ही रावण और कौरवों पर विजय पाई थी। परम संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने सूर्य का स्तवन करके ही राम चरित्र मानस की रचना की थी।

शरीर में मणिपूरक चक्र सूर्य चक्र है, प्रात: काल सूर्योदय से पूर्व एवं सायंकाल सूर्यास्त से पूर्व सूर्यचक्र को जाग्रत करने की साधना का विधान है। योग में सुषुम्ना नाड़ी को सूर्य द्वार माना गया है। इसमें संयम करने से भुवन ज्ञान होता है। सूर्य नारायण से अधिक सृष्टि के प्रारम्भ से सृष्टि के अन्ततक निरन्तर रहने वाला अन्य देव कोई भी नहीं है। सूर्य के प्रकाश से ही हमारी आँखें देखती हैं, अन्धकार में इसीलिए ही हमें कुछ भी दिखाई नहीं देता। प्रात: काल सूर्य का ब्रह्म स्वरूप तथा मध्यान्ह में विष्णु तथा सायंकाल रूद्र रूप होता

है। सूर्य ही वैश्वानर के रूप में हमारे शरीर में अन्न को पचाते हैं। संसार में अग्नि सूर्य का ही तेजांश है। सृष्टि में अन्न व फल भी सूर्य की ताप से ही पकते हैं। शिव पुराण में शिव और सूर्य को अभिन्न कहा है यथा–

''आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
अभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च।।

जगत में पञ्च भूतों के साथ प्राणि मात्र का सम्बन्ध अच्छेय है। इन पञ्च भूतों के अधिनायक पाँच देवता है।''

आकाश स्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्य क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपतः।।

विष्णु आकाश के स्वामी हैं, अग्नि की महेश्वरी, वायु के सूर्य जल के महेश्वर तथा पृथ्वी के गणेश अधिदेवता है। एतएव इनके अस्तित्व के बिना पाञ्चभौतिक देह का अस्तित्व नहीं रहता।

सूर्यनारायण प्रतिदिन सवेरे इस भूमण्डल पर ईश्वरीय तेज के रूप में पधारते हैं। अतः हम सबको चाहिये कि हम ब्रह्ममुहूर्त में उदित सूर्य को लाल पुष्प के साथ अर्घ्य प्रदान करें। सूर्योपासना से तेजस्वी संतानों का वरदान अनेकों ने प्राप्त किया है। सूर्य नारायण की भली प्रकार से उपासना करने पर सूर्य नारायण, आयु, आरोग्य ऐश्वर्य, स्वर्ग, अववर्ग सभी कुछ प्रदान करते है। शरीर के आरोग्य, धन, वृद्धि, यश महत्व उसे प्राप्त होते हैं जिस पर सूर्य नारायण प्रसन्न होते हैं। सूर्योपासना से अन्धा लोचन पाता है, वन्ध्यास्त्री पुत्र प्राप्त करती है। ऋणी व्यक्ति ऋण से मुक्त हो जाता है। सूर्योपासना से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। नेत्र रोग दूर होते हैं, सूर्य ताप से पाप नष्ट होते है। दरिद्रता दूर होती है। तेज, बल, आयु की वृद्धि होती है। और मरने के समय वे हमें अपने लोक में से होकर भगवान के परम धाम में ले जाते हैं। क्योंकि भगवान के परम धाम का रास्ता सूर्य लोक में से होकर गया है। सूर्य उपासना से इच्छाओं की पूर्ति होती है जो व्यक्ति नित्य सूर्य के एक सौ आठ नामों की नित्य पाठ करता है, वह स्त्री, पुत्र, धन, रत्न पूर्व जन्म–स्मृति, धृति, बुद्धि, विशेषता, इष्ट लाभ और भव मुक्ति प्राप्त करता है। षष्ठी और सप्तमी को सूर्य की पूजा करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। सूर्योपासना से अभीष्ट मनोरथों के पूरा होने का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है–

''किं किं न सविता दयात सम्यगुणसितः।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं स्वर्ग चाप वर्गक्य।।

भली प्रकार उपासना करने पर सूर्य नारायण क्या–क्या प्रदान नहीं करते। आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, स्वर्ग, अपवर्ग सभी कुछ उनसे मिलते हैं–

''शरीरारोग्यं कृच्वैव धन वृद्धि यशस्करः।
जायते नात्र सदेहो यस्य तुष्ये दिवाकरः।।

अर्थात्—शरीर के आरोग्य, धन, वृद्धि, यश यह सब उसे प्राप्त होते हैं जिस पर सूर्य प्रसन्न हैं।

भगवान सूर्य में जो प्रभा है तेज है वह परमात्मा का है। सूर्य उपासना करने वाला साक्षात प्रत्यक्ष रूप से ब्रह्म के तेज की ही उपासना करता है।

सूर्यव्रत:—रविवार को करना चाहिये। व्रत के दिन नमक सर्वथा वर्जित है। दिन में एक बार मिष्ठान का भोजन करें। एक अन्न ग्रहण करें। सूर्यास्त के बाद जल का भी ग्रहण न करें। व्रत के दिन अदरक भी नहीं खाना चाहिये। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। प्रातः काल तथा सायंकाल सूर्य नारायण को रक्तचन्दन, रोली तथा लाल पुष्प के साथ अर्घ दान करना चाहिए। आदित्य ह्रदय स्त्रोत का पाठ तथा **ॐ घृणि सूर्य आदित्योम''** सूर्य मंत्र का जप करना चाहिए। सूर्य नमस्कार व्यायाम नित्य करना चाहिए। सूर्य आराधना से दाद, फोड़ा, कुष्ट सफेद दाग, विसूचिका, हैजा प्रभृति रोग नष्ट हो जाते हैं। तथा कठिन से कठिन रोगों से मुक्ति पाकर लम्बी आयु पाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान भुवन भास्कर कर्मशीलता, कर्मठता किंवा लोक संग्रह के अद्वितीय उदाहरण हैं। वे मेरु मण्डल के चारों ओर निरन्तर भ्रमण करते हुए अपने प्रकाश एवं चैतन्य से निष्काम भाव से विश्व—कल्याण करते हैं। सूर्य नारायण का श्रेष्ठत्व इसीलिए भी है कि वे लोक—मंगल के लिए निरन्तर गतिशील रहते हुए तनिक भी आलस्य नहीं करते हैं। सूर्य ही काल चक्र के प्रणेता है' सूर्य से ही दिन रात्रि, घड़ी, पल, मास—पक्ष अयन तथा संवत आदि का विभाग होता है। अन्य देवताओं को भी सूर्य आभा के अन्तर्गत ही किया गया है। सभी के चेहरों पर तेजोवलय का समावेश आवश्यक माना गया है। जितने भी देवता या महात्माओं के चित्र बनाते हैं उनके सिर के पीछे तेज मण्डल का अंकन अनिवार्यतः किया जाता है—यह सूर्य की ही आभा होती है। चाँद अथवा सितारों का जो प्रकाश है वह भी सूर्य का ही प्रकाश है। योग शास्त्र के अनुसार नाभिमण्डल में सूर्य की स्थिति है। नाभि देश में अग्नि रूप सूर्य स्थित है और तालु मूल में अमृत रूप चन्द्रमा स्थित है जब चन्द्रमा नीचे की ओर मुख करके अमृत बरसाता है तब नाभि में स्थिति सूर्य उसको ग्रस लेता है। इसीलिए विपरीत करणी मुद्रा अर्थात् शीर्षासन का बहुत ही महत्त्व है। शीर्षासन में अपर नाभिवाले सूर्य तथा नीचे तालुवाले (चन्द्र) हो जाता है। योगी लोग ऊपर सूर्य को तथा नीचे चन्द्रमा को रख कर अमृत पान करते हैं। शरीर में इड़ा नाड़ी में चन्द्र और पिंगला नाड़ी में सूर्य और सुषुम्णा में शम्भु या अग्नि की स्थिति है। चन्द्रशक्ति रूप से तथा दाहिनी पिंगला नाड़ी का प्रवाहक सूर्य शंकर रूप से रहते हैं। नाड़ियों के स्वर से शुभाशुभ, सिद्ध, असिद्ध का ज्ञान किया जाता है। जैसे यात्रा में इड़ा तथा प्रवेश में पिंगला शुभ है। चन्द्र नाड़ी श्वेत, सम, शीत, स्त्री रूप है तथा सूर्य नाड़ी असित, विषम, उष्ण पुरुष है। शुभ कर्म में चन्द्र नाड़ी तथा रौद्रकर्म में सूर्य नाड़ी प्रशस्त है। सूर्य नाड़ी प्राण तथा चन्द्रनाड़ी अपान

बताया गया है। प्राण—अपान की एकता प्राणायाम ही हठयोग है। काशी के स्वामी विशुद्धानन्द जो सूर्य विज्ञान के महान वैज्ञानिक माने जाते थे। सूर्य विज्ञान के द्वारा एक जातीय वस्तु को अन्य जातीय वस्तु में परिणत कर देते थे। जिन्होंने एक अंग्रेज के द्वारा एक चिड़िया को मरवाकर उसे सूर्य विज्ञान के बलपर पुनः जिन्दा करना आदि चमत्कार दिखाये। उनका मानना था कि जगत में सारा सूर्य नारायण से ही चलता है। सूर्य ही जगत की प्रसविता है। सूर्य मण्डल तक ही संसार है सूर्य मण्डल का भेदन करने पर ही मुक्ति मिल सकती है। सूर्य मण्डल के बाद सत्य या परब्रह्म है। प्रकृति का रहस्य जानने के लिए सूर्य ही साधन है। भगवान सूर्य वायु तत्व के अधिपति हैं। दद्रु स्फोट कुष्ठादि रक्त विकार सम्बन्धी रोग वायु तत्व के बिगड़ने से होते हैं। अतः सूर्य की उपासना से यह रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान सूर्य के सूर्य नारायण उभय लोक—संरक्षक साधकों के मार्गदर्शक, लोक यात्रा के पालक एवं जगत के प्राणियों के लिए परम कल्याण स्तम्भ है। सभी देवी—देवताओं में सबसे श्रेष्ठ और सबसे अधिक उपकारक है सूर्य भगवान। अन्य देवी के दर्शनों के लिए हम जीवन भर तरसते रहते हैं। फिर भी उनके दर्शन नहीं होते लेकिन सूर्य नारायण जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक हमें नित्य दर्शन देते हैं। अन्य देवों के विषय में तो शंका की जा सकती है कि वो हैं भी या नहीं लेकिन सूर्य नारायण के विषय में कोई शंका नहीं की जा सकती। अन्य देवों की उपासना का फल मिलेगा अथवा नहीं मिलेगा। मिलेगा तो कब मिलेगा। इस पर कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन जो नित्य निरन्तर हमें अपना प्रकाश प्रदान करके हमारा भला व कल्याण कर रहे हैं। हमें, जीवन, प्राण, जल अन्न आदि दे रहे हैं। इतना सब जो बिना—पूजा—उपासना के हमें हमारे बिना माँगे दे रहे हैं। भला सूर्य नारायण जैसा परम उपकारी अन्य कौन हो सकता है। अभागा होगा वह प्राणी जो ऐसी उपकारी कल्याणकारी देवता को नित्य प्रणाम व अर्घ्यदान नहीं करता। अतः सूर्य भगवान का आवश्यक रूप से नित्य प्रणाम व अर्घ्यदान करो। ऐसा करने वाले को सूर्य भगवान, तुम्हें तेज देंगे, शक्ति देंगे, बल देंगे, बुद्धि और यश देंगे। किंचित् तुम उन्हें पूर्ण श्रद्धा व प्रेम से प्रणाम करके तो देखो।

***

योग के लिए श्रेष्ठ एकान्त स्थान गुरु का निवास स्थान है। अगर शिष्य के साथ गुरु रहते नहीं हों तो ऐसा एकान्त सच्चा एकान्त नहीं है। ऐसा एकान्त काम और तमस का आश्रय स्थान बन जाता है।

—स्वामी शिवानन्द

हमारे गुरुदेव

आर. सी. ठाकुर, कानपुर

जिस प्रकार गंगा का प्रवाह निरंतर बहता ही चला जाता है उसी प्रकार इस धरा पर महापुरुषों का अवतरण होता रहता है। ऐसा न हो तो धर्म लेशमात्र भी न रह जाय क्योंकि यह अकाट्य सत्य है कि धर्म के बिना विश्व ब्रह्माण्ड का अस्तित्व क्षण भर भी नहीं रह सकता। निःसन्देह धर्म के आधार पर ही जगत स्थित है। अब भी सिद्ध महात्मा योगीजन पहाड़ों की कन्दराओं में जन संख्या से पृथक रहकर अपने शुद्ध संकल्पों से, योग साधनों से, गुरु शिष्य परम्पराओं के माध्यम से, अनेकानेक धार्मिक सम्प्रदायों से कोई प्रत्यक्ष कोई वेष बदलकर, कोई काया निर्माण से निरन्तर पर्यटन कर रहे हैं। जिनको साधारण लोग जानते तक नहीं। मुक्त आत्मायें नित्य आत्मायें जन कल्याण हेतु भौतिक शरीर धारण करते हैं और जो जन्म लेते तथा मरते से प्रतीत होते हैं निःसन्देह वे अमर होते हैं। वे अपना कार्य करने के पश्चात तिरोहित हो जाते हैं। उनके लेख शिलालेखों के समान सुपात्रों व उनके अनुचरों के हृदय पटल पर अंकित होकर उनके आचरण को संवारते हैं। लोगों में नव जीवन संचार करते हैं उनका जीवन अलौकिक होता है, कार्य औचित्य होते हैं। उनके आदर्श औरों के लिये राजमार्ग समान बन जाते हैं।

ऐसे महापुरुष अपने को छिपाते रहते हैं। संतों एवं योगियों का जीवन ऐतिहासिक घटनाओं के ऊपर आधारित नहीं होता। उनकी गहराई का अनुमान किसी पुस्तक समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, लेखों, अभिलेखों से कदापि नहीं लग सकता। साधारण लोगों तक तो उनकी झलक तक नहीं मिल पाती। उनके योग ऐश्वर्य, दैवीसंपदा तथा आध्यात्मिक शक्ति के उच्च धरातल तक पहुँचना बड़ा ही विषम कार्य है। उसके लिये पात्रता होना अनिवार्य है फिर योग तत्व तो प्रकृति की सूक्ष्म विद्या है जो विद्वानों एवं मनीषियों की बुद्धि से अत्यन्त परे है। अध्यात्म योग सनातन से गुप्त रहा है और भविष्य में भी रहेगा क्योंकि यह अलेख्य है, अलभ्य है, बोधजन्य है, अन्तरंग है, अवर्णनीय व अगम्य है। हृदय की धरती पर गढ़े हुये खजाने का पता लगाना समाधि बुद्धि होने पर ही जाना जा सकता है। अव्यक्त विषय होने के कारण किसी योगी के विषय में बताना, योग के विशेष तत्वों तक पहुँचना अति दुर्लभ है क्योंकि उनका जीवन एक बन्द पुस्तक है। उनकी कुछ कृपाओं के आधार पर ही थोड़ा बहुत कहा जा सकता है। यह कार्य उसी तरह का है जैसे आसमान के तारे गिनना या महासागर में मोतियों का पता लगाना। योगियों के कार्य दिखते नहीं हैं। प्रकाश की एक किरण दिखा दी और पीठ फेर ली। उस किरण के सहारे न जाने वे क्या--क्या चला देते है।

हमारे पूज्य गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त विभूषित श्री चन्द्रमोहन जी महाराज उस सिद्ध भूमि के निवासी हैं जो सर्वोच्च है। जिस लोक में भूमि तत्व का अस्तित्व लेशमात्र नहीं और न पंच महाभूत ही जड़ रूप में कदाचित विराजमान ही है। यह शून्य से परे महाशून्य के अन्तराल में प्रकाशित चैतन्य एवं शाश्वत स्थिति

अत्यन्त रहस्यमय जगत है। जहाँ महासिद्ध योगी विश्राम पाते है, उनके आपसी वार्तालाप, क्रिया–कलाप, सूक्ष्म प्रकाश रश्मियों के स्पन्दन से होता है जिसका नियन्त्रण महाअवतारों अथवा योगावतारों द्वारा ही सम्भव है। शास्त्रों में वर्णित चार प्रकार की सिद्धियों में (१) मैली सिद्धि (२) मंत्र सिद्धि (३) योगसिद्धि (४) महासिद्धि में से सर्वोत्कृष्ट सिद्धि महासिद्धि है जो पारमेश्वरी सिद्धि है। यह परमेश्वर के इर्दगिर्द रहती है। जैसे भगवान राम तथा भगवान कृष्ण में थी। अष्ट सिद्धि का पूरा समूह मिलकर भी इस सिद्धि के बराबर नहीं है। यह जप तप साधना से उपलब्ध नहीं हो सकती। जब कोई योगी सर्वेश्वर बन जाता है ईश्वर की तमाम सिद्धियाँ जन्म से ही उसके पास आ जाती है।

हमारे गुरुदेव जन्म जन्मान्तर से महात्मा थे। जिसका वृतांत 'दिव्य जीवन दर्शन' पुस्तक के पृष्ठ संख्या १० पर है। जन्म–जन्मान्तर से अर्जित किया एक अनन्त सिद्धियों का भण्डार लेकर एक प्रकाश पुंज गण्डगी के पावन तट से उठता है हरियाना के अलपुर ग्राम में श्रीमती चरती देवी के उदर में प्रविष्टि होते तक परम पूज्य गुरुदेव के स्मरण में है। ऐसे महान योगेश्वर के आसपास सिद्धियाँ स्वयं आकर अपना कार्य करती हैं। उस अखण्ड मण्डलाकार को तो शायद ही पता हो कि वह कितना सिद्ध है। ध्यान रहे अवतरण स्थूल देह का न होकर सूक्ष्मादि अधिकारी देवताओं का ऋषियों का व योगेश्वरों का होता है। पिछले जन्म में गण्डकी नदी के पावन तट पर गोरखपुर से १०० किमी दूर किस ऋषि रूप में विराज मान थे ? जो महाव्योम में दिव्य आत्मायें है उनका पतन नहीं होता। भक्तों के संस्कार अथवा वासनायें उस स्वच्छ दिव्य लोक में जाकर तदनुकूल इच्छा पैदा करती है। इसलिये हमारी मनोकामनायें पूर्ण करने हेतु वह सूक्ष्म ज्योति जो गुरुदेव के मुखारविन्द से कही गई है। इस बात की पुष्टि करता है कि अवतार का जन्म दिव्य होता है, जिसको श्री मद्भगवद् गीता उद्घोषित करती है–

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं वेत्ति तत्वत:
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।

अर्थात् हे अर्जुन मेरे जन्म और कर्म दिव्य निर्मल अर्थात् अलौकिक है वह शरीर को त्याग कर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता। किन्तु मुझे प्राप्त होता है। अत: हमारे प्यारे गुरुदेव की मानवीय भूमिका में उतरने का उद्देश्य– दिव्य सामर्थ्य लेकर, दिव्य ज्योति के साथ दिव्य प्रयोजन से, दिव्य कार्यों को पहचानना तो दूर रहा उनके आगमन का हेतु जानना भी अति दुर्लभ है। क्योंकि–

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषी तनुमाश्रितम्।
परम भाव मजनन्तो मम भूत महेश्वरय।।

अर्थात् मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझे सम्पूर्ण भूतों के महान ईश्वर को तुच्छ समझते है। इसीलिये हम ऐसे महान योगेश्वर को न समझ पाये और न उनके ही उपदेशों को आचरण में ला सके। हम सब कुछ वह नहीं ले पाये जो वे दे सकते थे। यही तो हमें मलाल है–अफसोस है। हम भौतिक पदार्थों में ही लिप्त रहे। अपनी योग्यता को मापदण्ड बनाते। आठ वर्ष बीत

चुके यू बछड़ा गौ को न देख सकने पर उल्टी—सीधी छलांगे मारता है और इधर—उधर पूरी अल्हड़ता के साथ दौड़ता है, वही स्थिति हमारी है।

धन्य है, यह भारत भूमि जिसमें ऐसे महान दिव्य विभूति योग ऐश्वर्यों से सम्पन्न योगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज और धन्य है वह गोरे ब्राह्मण कुल जिसमें देवी राम जी पिताश्री तथा श्रीमती चरती देवी माता श्री जिन्होंने उस दिव्य प्रकाश पुंज को अपने उदर में, प्रवेश दिया और १६ अक्तूबर १९०७ को अलुपुर हरियाना में योग सूर्य के रूप में उदय किये। चार पाँच वर्ष की आयु में जिनके मनोरंजन के लिये स्वयं महायोगेश्वर जगदात्मा श्री कृष्ण उनके समकक्ष रूप में प्रकट होकर उनसे अठखेलियाँ खेलते थे। ऐसे योगेश्वर के विषय में क्या कहा जाय। दस वर्ष की अल्प आयु में ही मातृ वियोग तथा १९ वर्ष की आयु में लाहौर में तपोनिष्ट आचार्य विश्वबन्धु जी के सानिध्य में उच्च शिक्षा ग्रहण की। अनेकों बार महाप्रभु राम लाल जी महाराज दर्शन देते रहे आदेश देते रहे। अल्पकाल में ही अन्तर जगत के मालिक बन गये। अमृतसर के निकट गुरू के डण्डियाला में भगवान शिव की तीव्रतम आराधना की। तत्पश्चात स्वामी मुलखराज के बताने पर श्री प्रभु जी का साक्षात्कार एवं दर्शनलाभ ऋषिकेश में हुआ। श्री प्रभुजी ने उन्हें वृन्दावन जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। ५ से ७ बजे तक का ध्यानाभ्यास तथा योगी अगददत्ता योग एश्वर्य का परिचय व सानिध्य मिला। ब्रह्मचारी गोपालानन्द एवं अनेक ध्यानाभ्यासी संत महात्माओं की संगत मिली। कई अनुष्ठान कई यज्ञ, कई योग साधनायें, कई आध्यात्मिक महान कार्य, कई आश्रमों की स्थापना, कई परमार्थ के कार्य अनगिनत दीन दुखियों के दुखों का निवारण, योग द्वारा निशुल्क चिकित्सा लाभ, लाखों शिष्यों का आध्यात्मिक विकास शक्तिपात द्वारा असंख्य लोगों को धारणा ध्यान एवं समाधि के उच्चतम धरातल में पहुँचाना उनके लिये खेल था।

उनका व्यक्तित्व—परमपूज्य गुरूदेव शिव के समान गौर वर्ण लम्बे तगड़े ६ फीट से भी ऊँचे, कान्तियुक्त मुख मण्डल, अत्यन्त मनोरम मुखारविन्द, अन्तर ज्योति जगा देने वाले नेत्र, शंख समान कान, हास्य युक्त मुख मण्डल में न जाने किस मुद्रा में तटस्थ रहा करते थे। वे देखते थे तो प्रतीत होता था मानो प्रेम का स्रोत उमड़ पड़ा हो। वे सुनते थे तो उतने ही प्रेम से कान लगाकर। वे किसी के दुख दर्द की गाथा ऐसे सुना करते थे मानो क्षणभर में ही चुटकी बजाते ही सब दुःख दर्द दूर करने वाले हों। उनकी वाणी में अद्‌भुत आकर्षण था। वे जब स्नेह भरी वाणी में 'लला' 'लली' कह कर "सब ठीक हो जायेगा" "श्रीप्रभु जी सब ठीक कर देंगे" उनका निरन्तर स्मरण करो "पीठ में एक वात्सल्य भरी थपकी देते तो प्रेम से अन्दर के तार झंकृत हो उठते थे। मन रूपी चक्षु में उनकी प्रतिछाया पूर्ण रूप से अंकित हो उठती थी। सिर पर हाथ फिराना तो उनका विलक्षण क्षण ही होता था। उसे अमृत बेला कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा। उनका आर्शीवाद युक्त हस्त उठाना सैकड़ों लोगों को एक साथ दिव्य शक्तिपात करके कुण्डलिनी जाग्रत कर देना जीव युक्त कर देना। दैवी सम्पदा प्रदान कर देना, आत्मा तेज जगा देना उनके लिये विनोद का विषय था। वैसे भी वे बड़े विनोदी थे। वे शक्तिपात के निर्झर, निराधारों के आधार, निर्बल के बल। निर्धन के धन थे

और है। वेदों की ऋचायें, गीता के उद्घोष, रामायण की चौपाइयाँ, उपनिषद् वचन अपने प्रवचनों में ऐसे धारा प्रवाह से प्रयोग करते मानो अमृत उड़ेल रहे हों। सब शास्त्र उनको ऐसे कण्ठस्थ थे मानो ऋतंभरा प्रज्ञा की स्थिति में योगारूढ़ होकर कोई ब्रह्मवाणी की मोतियाँ बिखेर रहा हो। उन्होंने योग की वास्तविकता को प्रत्यक्ष अनुभूतियों द्वारा साधकों को भान कराया कि—हठ योग शारीरिक क्रियाओं द्वारा इन्द्रिय नियन्त्रण का योग है। भक्ति योग हृदय प्रधान होने के कारण प्रेम का मार्ग है। राजयोग को प्रतिध्यान एवं समाधि द्वारा की जाती है। मन्त्रयोग मन्त्रों के अनुष्ठानों से, ज्ञान योग बुद्धि प्रधान होने के कारण आध्यात्मिक ज्ञान का मार्ग है। तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग का विषय है। उन्होंने अनुभूतियों के आधार पर इस महायोग को समझाया। वे सिद्धयोग के वास्तविक व्याख्याता थे सिद्धयोग में महान ऋषि, मुनि, संत, महात्मा तथा योगीजन ऐसे हुये जिनमें सर्वसमर्थ गुरूदेव ही सर्वेसर्वा होते हैं। योग शिखोपनिषद के अनुसार—

नाना मार्गेण दुष्प्राप्यं कैवल्य परमं पदम्
सिद्धि मार्गेण लभते नान्यथा पद्म सम्भव।

अर्थात् जो कैवल्य रूप परम पद विविध मार्गों से कठिनाइयों से मिलता है वह सिद्ध कृपा से सहज ही में प्राप्त हो जाता है। सिद्ध उसे कहते हैं जो सब कुछ करने की क्षमता रखता हो। बने को बिगाड़ दे और बिगड़े को बना दे। उसके द्वारा दी हुई साधना ही सिद्धयोग है। यह शक्ति पात द्वारा गुरू शिष्य में प्रवेश करा देता है। सिद्ध गुरू आध्यात्मिक शक्ति को शिष्य के अन्दर संचरण या कृपा द्वारा आध्यात्मिक जागरण करता है। और उसकी प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करता है। यह दैवी प्रक्रिया दृष्टि, स्पर्श, शब्द तथा संकल्प द्वारा निष्पन्न होती है। यही संचालित योग सिद्धयोग है इसमें सभी योग समाविष्ट हैं। अन्य योग साधना योग की श्रेणी में आते है। सिद्ध लोक से सिद्धयोगी कुम्भ जैसे महापर्वों पर प्रयाग में श्री गुरूदेव के चरणों में पधारकर पुष्प प्रसाद प्राप्त कर पुनः आकाश मार्ग से सिद्धलोक आया जाया करते थे। जिसका प्रत्यक्ष कुछ विशेष शिष्यों को वे करा दिया करते थे। सिद्ध कृपा कभी असफल नहीं जाती और न शक्तिपात कभी कम होता है। सिद्ध गुरुओं के दिव्य संदेशों को हमें अंगीकार करना होगा।

उनके कार्यों को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। **हरि अनन्त हरिनाम अनंता।** हमें तो आश्चर्य इस बात का है कि महाप्रभु तथा योगेश्वर अनन्तश्री ये दोनों ही कौन है ये क्या—क्या करते है ?

१. एक अवधूत रूप में बिना वस्त्र के रहते थे दूसरे श्वेत धोती कुर्ता में।

२. एक साधना एवं एकान्तवास जमीन के भीतर (गुफा) में तो दूसरे आसमान पर तिमंजिले पर।

३. एक जंगलों में पहाड़ों में हिम आच्छादित स्थानों में विचरण करते तो दूसरे भारत के शहरों में ग्रामों में घरों में विचरण करके योग प्रचार करते।

४. एक बीस शरीर धारण करते तो दूसरे एक ही शरीर से अनेकानेक अनहोने कार्य कर देते।

५. एक साधारण समाज से दूर रहते दूसरे जनसाधारण से घिरे रहते।

६. एक लम्बी जटायें तथा दाड़ी रखते तो दूसरे सफासट। हमें भ्रम हो जाता है कि विभिन्न शरीरों में दिखने वाले तथा गुरु शिष्य के वेष में भिन्न—भिन्न लीलाओं को दिखाने वाले कहीं एक ही तो नहीं !

***

योग संदेश—९८

(योग प्रचार कार्यक्रम – कानपुर)

प्रेषक—केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

योग प्रचार मण्डल, श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र संवाई (आगरा) की कानपुर शाखा द्वारा एक विशाल योग शिविर का आयोजन कम्यूनिटी हाल, आई० आई०टी० कानपुर में दिनांक ९.१०.९८ से ११. १०.९८ तक किया गया। इस आयोजन की पूर्व सूचना सिद्धयोग पत्रिका, निजी पत्राचार, दूरभाष एवं व्यक्तिगत सम्बन्धों द्वारा कानपुर एवं देहात के साथ ही श्री सिद्धगुफा संवाई आश्रम से सम्बन्ध रखने वाले गुरु भाई बहनों को जो जहाँ भी निवास करते हैं विधिवत् कर दी गयी थी। कार्यक्रम का प्रारम्भ अखिल ब्रह्माण्ड नायक, परम योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की आरती के साथ दिनांक ९.१०.९८ को प्रारम्भ हुआ। इस विशाल योग महोत्सव में सम्मिलित होने वाले भाई बहनों का आगमन दिनांक ८.१०.९८ से ही आरम्भ हो गया था जो कार्यक्रम के अन्तिम क्षणों तक चलता रहा। योग के सारगर्भित रहस्यों को अपने अनुभव युक्त सरल एवं सुबोध भाषा में समझाने वाले प्रवचनकर्ता महानुभावों में गुरुदेव के विशेष कृपापात्र शिष्य आदरणीय ब्रह्मचारी श्री ओम प्रकाश जी पालीवाल, योगाचार्य ब्रह्मचारी श्री दासलालजी, आदरणीय डा. विजय सिंह गोरखपुर, आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा, लाल बहादुर संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, श्री पूर्णचन्द जी पन्त एवं काल्पी से पधारे आदरणीय श्री दुबे जी (पूर्व प्रधानाचार्य) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके साथ ही ब्रह्मचारी श्री केशव देव शर्मा, ब्रह्मचारी श्री राज नरेश शुक्ल संवाई धाम, गुरुदेव की अवतार स्थली श्री अरूपुर धाम से पधारे ब्रह्मचारी गण एवं महाप्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय झाँसी के बालक—बालिकाओं द्वारा प्रस्तुत भजन—संकीर्तन—वाद्य—नृत्य आदि के श्री प्रभु समर्पित कार्यक्रमों (भावों) की आनन्ददायी एवं मनोहारी छटा ने, श्री सद्गुरुदेव भगवान के पार्षद आदरणीय गुरुभाई श्री भुवनेन्द्र जी के साथ मिलकर श्री प्रभु की स्थूल उपस्थिति में मनाये जाने वाले संवाई धाम के उत्सवों की आनन्दमयी योगधारा को तरोताजा कर दिया।

दिनांक नौ, दस एवं ग्यारह अक्टूबर के दैनिक, योग शिविर कार्यक्रम कुछ इस प्रकार आयोजित किये गये थे कि प्रातः काल छः बजे से पूर्व सूक्ष्म आरती हुआ करती थी जिसमें कम्यूनिटी हाल में रुके हुये आदरणीय ब्रह्मचारी गण एवं सभी गृहस्थ गुरुभाई बहन सम्मिलित हो जाते। प्रातः छः बजे से सात बजे के मध्य ब्रह्मचारी गण एवं संकीर्तन वाले पण्डाल में सामूहिक रूप से श्री महाप्रभु जी की प्राणीमात्र को अमरदेन जीवन तत्व साधन करते थे। प्रातः सात बजे से साढ़े सात बजे के मध्य असाध्य रोगियों के लिए आश्रम के योग्य ब्रह्मचारी गणों एवं आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा द्वारा किसी विशेष रोग के लिए विशेष आसन का

निर्देश दिया जाता था, उसे स्वयं करके दिखलाया जाता था एवं अपने सामने रोगी द्वारा कराया जाता था। आठ बजे के बाद आरती का कार्यक्रम सामूहिक किया जाता था। आरती के समय विशाल पण्डाल करीब–करीब पूरा साधकों एवं योग जिज्ञासुओं से भर जाता था। सामूहिक आरती योगाचार्य ब्रह्मचारी श्री दासलाल जी या आदरणीय गुरूभाई श्री भुवनेन्द्र झा द्वारा की गयी। प्रातः ९ बजे से १० बजे के मध्य अल्पाहार दस बजे से एक या डेढ़ एवं दो बजे तक यौगिक प्रवचन होते थे जिसका संचालन ब्रह्मचारी श्री ओमप्रकाश जी पालीवाल (योगाचार्य) लखनऊ आश्रम द्वारा किया गया। यौगिक प्रवचनों में परम आदरणीय श्री चन्द्रहास जी शर्मा, योगाचार्य ब्रह्मचारी श्री दासलाल जी, डा. विजय सिंह एवं श्री पूर्ण चन्द जी पन्त (हिमालय प्रदेश) विशेष उल्लेखनीय है। अपराहन् तीन बजे से पाँच बजे तक भजन कीर्तन का कार्यक्रम होता था। सायंकाल छः बजे से आठ बजे तक यौगिक प्रवचन का कार्यक्रम होता था। उसके पश्चात् आरती–पूजन, भोजन एवं विश्राम तथा प्रातः पाँच बजे से पुनः इसी कार्यक्रम की पुनरावृत्ति होती थी। अपराहन् का भजन कीर्तन मुख्यतया झाँसी मण्डल से पधारे बाल गोपालों द्वारा आदरणीय एकनिष्ठ गुरूभाई श्री कृष्णकान्त जी झा द्वारा सम्पादित किया गया। जिसमें स्थानीय कानपुर निवासी भाई–बहनों का सहयोग भी सराहनीय रहा। प्रातः काल के कार्यक्रमों, जीवन तत्व साधन, रोग निवारण हेतु आसन प्रदर्शन एवं ध्यान की कक्षाओं के समय योग्य योगी साधक आदरणीय श्री चिन्तामणि जी पाण्डेय एवं श्री मनोहर तिवारी जो श्री गुरूदेव भगवान के कृपापात्र शिष्य गंगापुर सिटी राजस्थान से पधारे की उपस्थिति आनन्ददायक रही। जो कार्यक्रमों के दिनों में नित्य सुलभ थी। सर्व श्री आ.सी. ठाकुर अशोक, ब्रह्मचारी दासलाल जी की देखरेख में किया गया जीवन तत्व साधन काफी उत्साह वर्धक, सराहनीय एवं अनुकरणीय रहा। इस उत्सव में आदरणीय गुरूभाई श्री स्वरूपानन्द जी भी आये थे।

इस योग सम्मेलन कार्यक्रम मण्डप को अपनी संगीत–भजन कीर्तन–प्रभु समर्पित कव्वाली द्वारा जिन महान कलाकारों ने आकर्षण का केन्द्र बनाया उनमें आदरणीय अन्तर्राष्ट्रीय कव्वाल पं. राम गोपाल द्विवेदी (शिक्षक) अपनी मण्डली के साथ एवं गंगापुर सिटी राजस्थान से पधारे आदरणीय भाई विशेष रूप से प्रशंसा के पात्र है।

आचार्य पूर्णचन्द पन्त का योग संदेश था–**उपनिषदों में योग एवं मानव जीवन में योग की आवश्यकता** ! उपनिषदों में मुख्य वर्णन योग का ही है, इस तथ्य को श्री पन्त जी ने अच्छी प्रकार से समझाया। योग के बिना उपनिषद अधूरे हैं। इस बात को अनेक उदाहरणों द्वारा उन्होंने प्रमाणित किया एवं योग की आवश्यकता इस विषय को सविस्तार उद्घोषित किया। आप ने यह बतलाया कि चौरासी लाख योनियों में सिर्फ मनुष्य योनि ही कर्म योनि है। बाकी सभी भोग योनियाँ हैं। यहाँ तक की देवगण भी भोग योनि में ही है। मनुष्य जीवन का परमलक्ष्य है जन्म–मरण के चक्कर से छूट जाना एवं यह परम लक्ष्य केवल मनुष्य योनि में ही स्वाध्याय एवं योग साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अन्य योनियों में यह कठिन ही नहीं असम्भव ही है।

डा. विजय सिंह के योग संदेश का विषय था **"योग के प्रकार और उपयोग"** आप ने बतलाया कि योग शब्द इतना व्यापक एवं प्रभावशाली है कि संसार के सभी सिद्धान्तवादियों ने, चाहे वे किसी भी मत के हो इसे हृदय से अपनाया है। भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, राजयोग, लययोग, हठयोग, शून्ययोग इत्यादि ये सभी शब्द इसकी व्यापकता के परिचायक है। भगवान पतंजलि देव जी के योगदर्शन के अनुसार योग को दो भागों में बाँटा जा सकता है प्रथम सम्प्रज्ञात एवं दूसरा असम्प्रज्ञात। इसको सरल भाषा में एकाग्रावस्था एवं निरूद्धावस्था कहा जा सकता है। आगे आप ने बतलाया कि सारे संसार के प्राणियों के चित्त पाँच अवस्थाओं में विभक्त रहा करते है:–

(१) मूढ़ावस्था के प्राणी:– जिनमें तमोगुण प्रधान रहता है तथा रज व सत्व गौण हो जाया करते हैं। किसी भी प्रकार इनकी उदरपूर्ति होती रहे इसके अतिरिक्त किसी के हिताहित तथा लोक व परलोक से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(२) क्षिप्तावस्था के प्राणी:–इनमें रजोगुण प्रधान रहता है तथा तमोगुण व सतोगुण गौण रहने के कारण इनके मन में चंचलता, दुःख, शोक, चिन्तायें बनी रहती हैं। सांसारिक कार्य की सफलता ही इनका परम लक्ष्य रहता है। पुनर्जन्म मे इनका विश्वास नहीं होता एवं न ये ईश्वर की सर्वव्यापक सत्ता को मानते हैं।

(३) विक्षिप्तावस्था के प्राणी:–इनमें सत्वगुण प्रधान होता है तथा रजोगुण एवं तमोगुण गौण रहा करते है। ये लोग ईश्वर की व्यापक सत्ता को स्वीकार करने के साथ ही स्वाध्याय, संकीर्तन एवं उपासनायें आदि करते हैं ताकि ईश्वरानुग्रह की प्रतीक्षा में अपने मन को आश्वासित रखा करते है।

(४) एकाग्रावस्था के प्राणी:–इनमें सतोगुण प्रधान रहता है तथा रजोगुण व तमोगुण नाममात्र के लिये शेष रहते हैं। मनुष्य का मन बड़ा ही अद्भुत एवं शक्तिशाली है। एवं बड़े–बड़े अद्भुत कार्य मन की एकाग्रता से ही सम्पन्न होते हैं। इस अवस्था के प्राणी को उपासना एवं ध्यान में विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ हुआ करती हैं एवं मन की शक्तियाँ प्रकट होती रहती हैं। संक्षेप में इनका मन एकाग्रता अवस्था में रहता है।

(५) निरोधावस्था के प्राणी:–इनमें बाहर के गुणों का परिणाम बन्द होकर चित्त सत्व में निरोध परिणाम संस्कार मात्र शेष रह जाता है, ये अपने द्रष्टा स्वरूप में स्थित हो जाते हैं। इस अवस्था के साधक को पंचभूत एवं पंचभूत से होने वाले सब क्रियाकलापों को पूर्ण प्रत्यक्ष करने की शक्ति प्राप्त होती है।

अपने त्रिदिवसीय संदेश कार्यक्रम में आप ने उपरोक्त वर्णित स्थितियों में उत्तरोत्तर विकास पर बल दिया एवं कहा कि जो इस तरफ बढ़ने का प्रयास करेगा, सर्वसमर्थ श्री प्रभुजी अवश्य ही उसका मनोरथ सफल बनायेंगे।

योग विद्या का प्रत्यक्ष–प्रायोगिक अनुभव रखने वाले आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा ने श्री गुरूदेव एवं शिष्य के प्रकार को तीन भागों में विभक्त किया:–

(१) गुरूदेव सर्व समर्थ हों एवं शिष्य महान पापात्मा हो, इस विषय को समझाने के लिये आप ने

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा रामरती उद्धार का प्रसंग सरल एवं सुबोध तरीके से समझाया।

(२) शिष्य महान श्रद्धायुक्त हो परन्तु गुरूदेव द्वारा उपेक्षित हो, इस विषय को समझाने के लिये आपके द्वारा श्री एकलव्य एवं आचार्य द्रोणाचार्य के प्रसंग का सविस्तार वर्णन समझाया गया।

(३) गुरूदेव सर्वसमर्थ एवं शिष्य श्रद्धायुक्त आज्ञाकारी। इस विषय को सविस्तार समझाने के लिये आपके द्वारा अखिल ब्रह्माण्ड नामक महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा श्री हरिराम शर्मा को तत्वविजयी अमर सिद्ध योगिराज हरिहरानन्द जी महाराज बनाने का कथानक भाव विभोर होकर उद्बोधित किया गया।

इसी तारतम्य में आपने सावधान करते हुये बतलाया कि आजकल गुरूदेव बनने की होड़ सी लगी हुई है। आध्यात्मिक किरण की मात्र एक झलक पाते ही प्राणी अपने को गुरूदेव बनने एवं मानने को तैयार हो जाता है। यह प्राणी का अज्ञान एवं अभिमान नहीं तो और क्या है ? ऐसे गुरूओं के विषय में ही तो कहा गया है:—

गली—गली में गुरू फिरे, कोऊ गुरूदीक्षा लेहु।
स्वर्ग जाव या नरक को, सवा रूपैया देहु।।

ऐसे तथाकथित गुरूदेव जो स्वयं ही बुझे हुये है दूसरे की ज्योति क्या जगायेंगे। शिष्य का भला तो दूर वे स्वयं अपना ही नुकसान कर रहे है। आप ने जोर देकर कहा कि पहले सच्चे, श्रद्धायुक्त शिष्य बन जाओ एवं फिर देखो इतना आध्यात्मिक आनन्द मिलेगा कि उपरोक्त तथाकथित गुरूओं का स्तर तुम्हें बौना दिखने लगेगा।

इसी तारतम्य में आचार्यश्री ने योगी स्वामी विवेकानन्द जी एवं गुरूदेव सर्वसमर्थ रामकृष्ण परमहंस, योगी गोरक्षनाथ जी एवं सर्वसमर्थ गुरूदेव श्री मत्स्येन्द्रनाथजी तथा अपने गुरूदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं अखिल ब्रह्माण्ड नायक दादा गुरूदेव सर्वसमर्थ श्री रामलालजी महाराज की लीलाओं से सम्बन्धित प्रसंगों का वर्णन करके सच्चा शिष्य ही बनने को श्रेयस्कर बतलाया।

ब्रह्मचारी श्री ओम प्रकाश जी पालीवाल की अध्यक्षता में इस प्रकार लगातार तीन दिन तक चलने वाला यह **योग संदेश कानपुर**, ग्यारह अक्टूबर को एक अमिट शिक्षाप्रद स्मृति के साथ समाप्त हुआ। यद्यपि अनाथ नाथ की अहैतुकी कृपा के बिना इस प्रकार का आध्यात्मिक एवं शिक्षाप्रद विशाल आयोजन कठिन ही नहीं असम्भव सा ही है तथापि इसके लिये तन—मन—धन अर्पित करने वाले हमारे कानपुर के गुरुभाई—बहन अवश्य ही प्रसंशनीय एवं अनुकरणीय है। अन्त में इस योग संदेश अन्ठानवें के कार्यक्रम में सुनायी गयीं इन पंक्तियों के साथ वर्णन विरामित है:—

इस दर की गुलामी जिसे नसीब हो जाय।
उस गुलाम की सारी दुनिया गुलाम हो जाय।।

* * *

सन्त तुलसी जी के जीवन में भक्तियोग

डा० स्वामी केशवाचार्य, चान्दोद (बड़ौदा)

अपने इष्ट के चरण–कमलों में अनन्य श्रद्धा और प्रेम का होना ही भक्ति है। "**भक्तियोग रागात्मिका वृत्ति** है। हृदय का एक भाव है। प्रेम–भाव उसी स्वरूप और गुण–समूह पर टिक सकता है, जो हृदय जगत में हमें आकर्षित करता रहता है।" भक्तियोग मानव हृदय में 'ईष्ट के प्रति' श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उत्पन्न होता है। भक्ति योग का स्थान मानव हृदय है। वहीं श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है। प्रेम और श्रद्धा का रंग जितना गाढ़ा होगा भक्तियोग उतना ही गहन और अचल होगा। संत तुलसी दास जो विभिन्न देवी–देवताओं की निष्ठा पूर्वक स्तुति वंदना करते हुए अपने परम प्रिय 'राम' की सत्ता को प्रत्येक स्थान एवं काल में स्वीकार करते हैं। उनका हृदय राम के लिए ही है। उनका सर्वस्व भी राम ही हैं। संत तुलसी दास जी की भक्ति **चातक भक्ति** है। चातक की बादलों के प्रति, और उनकी स्वयं की राम के प्रति भक्ति है। यहाँ तुलसी जी ने जो सच्चे भक्ति योग का स्वरूप प्रदर्शित किया है, वह अन्यत्रदुर्लभ सा है।

'उपल बरसि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहूँ दूसरी ओर।।

।। दोहावली २८३।।

संत तुलसी जी को चातक के समान अपने घनश्याम पर भरोसा है। विश्वास है, और बल भी। तभी तो वे कहते हैं—

"एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास"।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसी दास"।।

।। दोहावली २७७।।

सन्त तुलसी येन–केन–प्रकारेण अपने राम के नजदीक रहना चाहते है, क्योंकि राम के अतिरिक्त उनका और कोई प्रिय नहीं है। तुलसी जी की भक्ति योग "**तुलसी चाहत जन्म भरि राम चरण अनुराग**" (दोहावली ९१) श्रद्धा और प्रेम के ताने–बाने में बुनी है। सन्त तुलसीजी भगवान राम के सम्पर्क में आने वाली तुच्छ से तुच्छ वस्तु और साधारण प्राणी तक से प्रेम करते हैं। जहाँ प्रेम है वहीं सुख है। तुलसी जी तो पूर्ण आस्था एवं विश्वास से कहते हैं कि भगवान राम की भक्ति के बिना कोई सुख सम्भव नहीं है। इसी भक्ति योग **रघुपति–भगति–बिना सुख नाहीं**। (रा.च.मा. ७/१२२ (क) ७ के माध्यम से सुख प्राप्त करने के लिए तुलसी जी ने भक्ति योग के निम्नलिखित अटल सिद्धान्तों की घोषणा की। तुलसी जी का भक्तियोग मुख्य रूप से "दास्य भावना" पर आधारित है। वे स्वयं स्वीकार करते है—

"हौंहुँ कहावत, सब कहत, राम सहत उपहास।
साहब सीता–नाथ से, सेवक तुलसी दास।।"

(दोहावली १८१)

श्री राम के परम भक्त तुलसी की भक्ति योग में सेवा भाव का चरम उत्कर्ष हुआ है। सेवक का सेवा भाव के अभाव में संसार सागर से पार उतरना कठिन ही नहीं अपितु पूर्ण असम्भव है। सन्त तुलसी जी

लिखते हैं—

सेवक–सेव्य–भाव–बिनु, भव न तरिअ उरगारि।।

(रा.च.मा. ७/११९/क)

सन्त तुलसी दास जी ने अपने सभी ग्रन्थों में श्रीराम चरित मानस, विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, बरवैरामायण आदि में अदम्य–उत्साह से श्री रामभक्ति का गुणगान किया है। सम्पूर्ण मानस तो सन्त तुलसी के इस सुयत्न का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मानस के प्रारम्भ में ही वे समस्त संसार को सीता और राम का रूप मानकर प्रणाम करते हैं—

"सीय राम मय सब जग जानी।
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी।।

(रा. च. मा. १८१)

भक्ति के दो पक्ष हैं। प्रथम **आलम्बन**— जिसकी भक्ति की जाती है। आलम्बन में शील का असामान्य उत्कर्ष होना भक्त को अपने प्रति आकर्षित करने का प्रथम गुण है। यदि आलम्बन असाधारण शील के आकर्षण से विहीन है तो भक्त उसके प्रति कभी भी आकर्षित नहीं होता। भक्त अपने इष्ट–'उपास्य'– में शील की असाधारणता देखकर ही उसके प्रति झुकता है और इस झुकाव से उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है। यही प्रेम शनैः–शनैः परिपक्व होकर भक्ति योग के स्वरूप को प्राप्त होता है। भक्ति का दूसरा पक्ष है—**भक्त**—जो भक्ति करता है। भक्त को अपने इष्ट के प्रति आकर्षित होने के लिए अपने हृदय को प्रेम की सुमधुर एवम् सुकोमल भावनाओं से परिपूर्ण रखना चाहिये। इस प्रेम से आगे चलकर **सदाचार** उत्पन्न होता है। अतः भक्त का प्रेमी और सदाचारी होना नितान्त अनिवार्य है। इसी कारण **सदाचार और भक्ति योग अन्योन्याश्रित** है। शील के असामान्य उत्कर्ष को प्रेम और भक्तियोग का आलम्बन स्थिर करके सन्त तुलसी ने सदाचार और भक्ति योग को अन्योन्याश्रित करके दिखा दिया है। अतः शीलवान इष्ट के प्रति प्रेम की उत्कट भावना ही भक्ति योग का स्वरूप धारण कर लेती है। तुलसी जी ने राम जी में इसी शील का असाधारण उत्कर्ष दिखाकर उनके प्रति प्रेम उत्पन्न किया है—

"सुनि सीता पति–शील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलकि नैन जल, सोनर खेहर खाऊ।"
सिसुपन ते पितु मातु बन्धु गुरु, सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम–विधु बदन रिसौं हैं, सपने हुँ लखयो न काउ।।
समुझि समुझि गुण ग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसी दास अनयास राम पद, पइहैं प्रेम पसाऊ।।

विनय पत्रिका १००/१, २, १०।।

वास्तव में ज्ञान और प्रेम दोनों ही भगवद् भक्ति योग प्राप्ति के साधन हैं। किन्तु सन्त तुलसी जी भक्ति योग को ही अधिक उपादेय समझते हैं। भगवान राम स्वयं स्वीकार करते हैं—

"कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानहु एक भगति कर नाता।।"

रा. च. मानस ३/३५/२

श्री तुलसी जी के मत से श्री राम भक्ति योग की साधना का कोई एक निश्चित मार्ग नहीं है। तुलसी जी ने इस भक्ति योग के अनेक सोपान—(कथा–गान, सत्संग, गुरु सेवा, गुणगान, मन्त्र जाप, दृढ़ विश्वास पूर्ण भजन, दम, शील, विरक्ति, अनासक्ति भाव) बताए हैं। श्री तुलसी जी की यह नवधा भक्ति योग शास्त्रीय नहीं है। उत्तर काण्ड में काग भुशुण्डि जी के प्रसंग में पंचम सिद्धान्तों (श्रद्धा, ज्ञान, मति, इन्द्रिय संयम, निष्ठा) का वर्णन किया गया है। पर ये साधन अन्त में एक ही लक्ष्य साधते हैं—

"सब साधन कर सुफल सुहावा।
लखन राम सिय दरसन पावा।।"

रा. च. मानस २/२१०/२

इस राष्ट्र में हमारे यहाँ धार्मिक परम्परा के अन्तर्गत साधना के तीन सोपान (ज्ञान योग मार्ग, कर्म–योग मार्ग, भक्ति योग मार्ग) माने गये हैं। मानस का कर्मयोग मार्ग भी भक्ति योग मार्ग से परिपूर्ण है। यह निष्काम कर्मयोग मार्ग है। अन्य दोनों कर्मों की तुलसी जी ने मानस के उत्तर काण्ड में विशुद्ध व्याख्या की है। ज्ञान योग की महत्ता एवं कठिनता को प्रदर्शित करते हुए तुलसी जी लिखते हैं–

"कहहि सन्त–मुनि वेद, पुराना।
नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना।।"

रा.च. मानसा ७/११५ क/५

और आगे ज्ञान और भक्ति में अभेद बताते हुए तुलसी दास जी का कथन दृष्टव्य है–

"भगतहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहि भव सम्भव खेदा।।"

रा.च.मा. ७/११५ क ७

भक्ति योग कर्मयोग के साथ अधिक दृढ़ हो जाती है। ज्ञानयोग का अर्थ है विचार की साधना, कर्मयोग का अर्थ है आचरण की साधना। भक्ति योग के अन्य शास्त्रोक्त सोपानों को भी सन्त तुलसी जी ने स्वीकार किया है। यथा–

श्रवण:– जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।

मानस २/१२८/४

पादसेवा:–कर नित करहि राम पद पूजा।
राम भरोस हृदय नहिं दूजा।।

मानस २/१२९/४

स्मरण– मन्त्र राज नित जपहि तुम्हारा।
पूजहि तुम्हहि सहित परिवार।।

मानस २/१२९/६

कीर्तन: –जस तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहाजासु।
मुकताहल गुन–गन चुनइ, राम बसहुहियतासु।।

मानस २/१२८

अर्चन: –तुमहि निवेदित भोजन करहिं।
प्रभु–प्रसाद पट भूषन धरहीं।।

मानस २/१२९/३

वंदन:–सीस नवहि सुर–गुरु–द्विज देखी।
प्रीति–सहित करि विनय विसेखी।।

मानस २/ १२९/३

सखाभाव–स्वामि, सखा, पितु, मातु, गुरु, जिनके सब तुम तात।
मन–मंदिर तिनके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात।।

मानस २/१३०

आत्म निवेदक एवं दास्य:–
तुमहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं।
राम बसहु तिनके मन माहीं।। मानस २/१३०/५

विनय पत्रिका तो भक्त तुलसी का सम्पूर्ण आत्म निवेदन ही है। भक्ति योग का मार्ग सीधा–साधा और सरल है। भक्ति योग से ही मनुष्य का जीवन ज्ञान, धर्म सुधरता है। भक्ति योग के उद्गार ने ही राष्ट्र की संस्कृति को प्रौढ़ता प्रदान की और मानव जीवन को प्रशस्त किया। सन्त तुलसी जी की भक्ति योग की विशेषता है– उसकी सर्वांग–पूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर नहीं चलती है। सभी पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। तुलसी जी की भक्ति योग को कर्मयोग और ज्ञान योग दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। इनमें सम्पूर्ण समन्वय है। तुलसी दास जी अपने भक्ति योग में–**जनम–जनम रति राम–पद, यहि बरदान न आन।** मानस २/२०४ अपने जन्म–जन्मान्तरों में भी राम के प्रेम की कामना करते

है। वे राम के अतिरिक्त किसी और पर भरोसा भी नहीं करते हैं। वे कहते हैं—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्याण फरो।।
करम, उपासन, ज्ञान, वेद मत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो।।

विनय पत्रिका २२६

श्री तुलसी जी की भक्ति योग मोक्ष की कामना नहीं रखती है। वह तो सदैव भगवान राम के चरणों में अनुराग बढ़ाना चाहती है।

चहौं न सुगति, सुमति, सम्पति कछु,
रिधि—सिधि विपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ै।
अनुदिन अधिकाई।। विनय पत्रिका १०३।।

श्री तुलसी जी तो सदैव राम जी की सेवा में रत रहकर उनके कृपामात्र बने ही रहना चाहते हैं। वे किसी देवी—देवता से कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखते है। विनय पत्रिका में तुलसी जी का कथन दृष्टव्य है—

''कबहूँ कहौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ—कृपालु कृपाते संत सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सौं कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन प्रेम निबहौंगो।।
पुरुष वचन अति दुसहश्रवण सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहि दोष कहौंगो।।
परिहरि देह जनित चिन्ता, दुःख—सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसी दास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो।।'' विनय पत्रिका १७२

श्री तुलसी जी की भक्ति योग का सार 'सत्य' राम नाम में प्रगट हुआ है। यह 'सत्य' राम—नाम ही उनकी भक्ति योग का सार और उनके सरस का सर्वस्व वरदान सिद्ध हुआ है। भक्त जब इसी सत्य के द्वारा अपनी सिद्धि की अवस्था को प्राप्त होता है, तब उसकी भक्ति योग ही उसका साध्य बन जाती है। लौकिक जीवन में ही तुलसी जी ने भक्ति योग को ही कल्याणकारी कहा है।

तुलसी जी के भक्ति योग का अद्वितीय स्वरूप जो प्रतिपादित किया गया है वह जन मानस को भक्ति योग की गंगा में अवगाहन कराता हुआ अपने ईष्ट के निकट लाने का श्रेष्ठ मार्ग है।

इसी प्रकार तुलसी जी भक्ति योग पद्धति व्यक्तिगत लाभ की संकीर्ण परिधि को त्याग कर लोक—कल्याणकारी व्यापक भावना से ओत—प्रोत है। इसी कारण से उनकी भक्ति योग—पद्धति लोक कल्याण का पथ प्रदर्शन करने में सहायक सिद्ध ही नहीं हुई अपितु भक्तों के गले का हार बन गयी। जिस प्रकार कामीको स्त्री, लोभी को धन प्रिय लगता है उसी प्रकार श्री तुलसी जी को राम प्रिय लगते हैं।

कामिहि नारि पिआरिजिमि, लोभहिजिमि प्रिय दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम।।

राम च. मानस ७/१३० ख।

इन प्रमाणों से प्रमाणित होता है कि जिस तरह तुलसी जी को राम ही प्रिय थे। उसी तरह मनुष्य को अपने ईष्ट के चरणों में अपने सद्गुरु के चरणों में प्रेम रखना चाहिये। क्योंकि—

जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई।
गिरिजा सोई कृपाल रघुराई।।

जिनकी कृपा से संसार का भ्रम टूट जाय वही राम है। वही प्रभु है। वही सब कुछ है। इसलिए भक्ति योग के द्वारा अपने राम को अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये।

* * *

सम्पादकीय सूचना

'सिद्धयोग' पत्रिका का उद्देश्य योग सिद्धान्तों व विचारों का प्रचार एवं प्रसार करना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु विषय से सम्बद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण एवं योग साहित्य के ग्रन्थों में वर्णित, यौगिक विषय जो आक्षेप रहित एवं प्रेरणाप्रद हों ऐसे लेख ही प्रकाशित होते हैं। किसी मत, सम्प्रदाय आचार्य परम्परा एवं उनके सिद्धान्तों का खण्डन–मंडन करना इस पत्रिका की मर्यादा के विरुद्ध है।

अत: योग विषयक व सिद्धयोग–परम्परा से सम्बन्धित, साधना की दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा साधकों की ज्ञानवृद्धि में सहायक हों, ऐसे लेख ही विद्वत् लेखकों भेजने चाहिये। लेख में संशोधन, परिवर्तन आदि करने अथवा उन्हें प्रकाशित या प्रकाशित न करने का सम्पूर्ण अधिकार सम्पादक का ही है। लेख स्वच्छ एवं सुपाठ्य अक्षरों में कागज के एक ही ओर हाशिया छोड़कर लिखा हुआ होना चाहिये, ताकि मुद्रण कार्य सुगम हो सके।

—सम्पादक

'गुरुदेव वचनामृत' का द्वितीय खण्ड

पूज्यपाद गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा विभिन्न अवसरों पर दिये गये प्रवचनों का पावन संकलन **'गुरुदेव वचनामृत'** का द्वितीय खण्ड भी यथासमय प्रकाशित हो चुका है। इच्छुक सज्जन अपने निकट के आश्रमों से अपनी प्रति प्राप्त कर सकते हैं या आचार्य दासलाल शर्मा से निम्न पते पर पत्राचार कर डाक द्वारा मंगवा सकते हैं।

प्रति का मूल्य रु. ३५
(डाक व्यय अतिरिक्त)

व्यवस्थापक **'सिद्धयोग'**
श्री सिद्धगुफा संवाई
एत्मादपुर, आगरा (उ०प्र०)

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008 दिसम्बर, 1998

प्रेषण कार्यालय :–

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER

Book Post

श्री ----------------------

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयो: ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभाव: प्रसीदति ।।

(कठोपनिषद् २/३/१३)

उस परमात्मा को पहले तो 'वह अवश्य है' इस प्रकार निश्चयपूर्वक ग्रहण करना चाहिये अर्थात् पहले उसके अस्तित्व का दृढ़ निश्चय करना चाहिये। तदन्तर तत्वभाव से भी उसे प्राप्त करना चाहिये। इन दोनों प्रकारों में से वह अवश्य है इस प्रकार निश्चय पूर्वक परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करने वाले साधक के लिए परमात्मा का तात्विक स्वरूप अपने आप शुद्ध हृदय में प्रत्यक्ष हो जाता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिण्टिग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326